

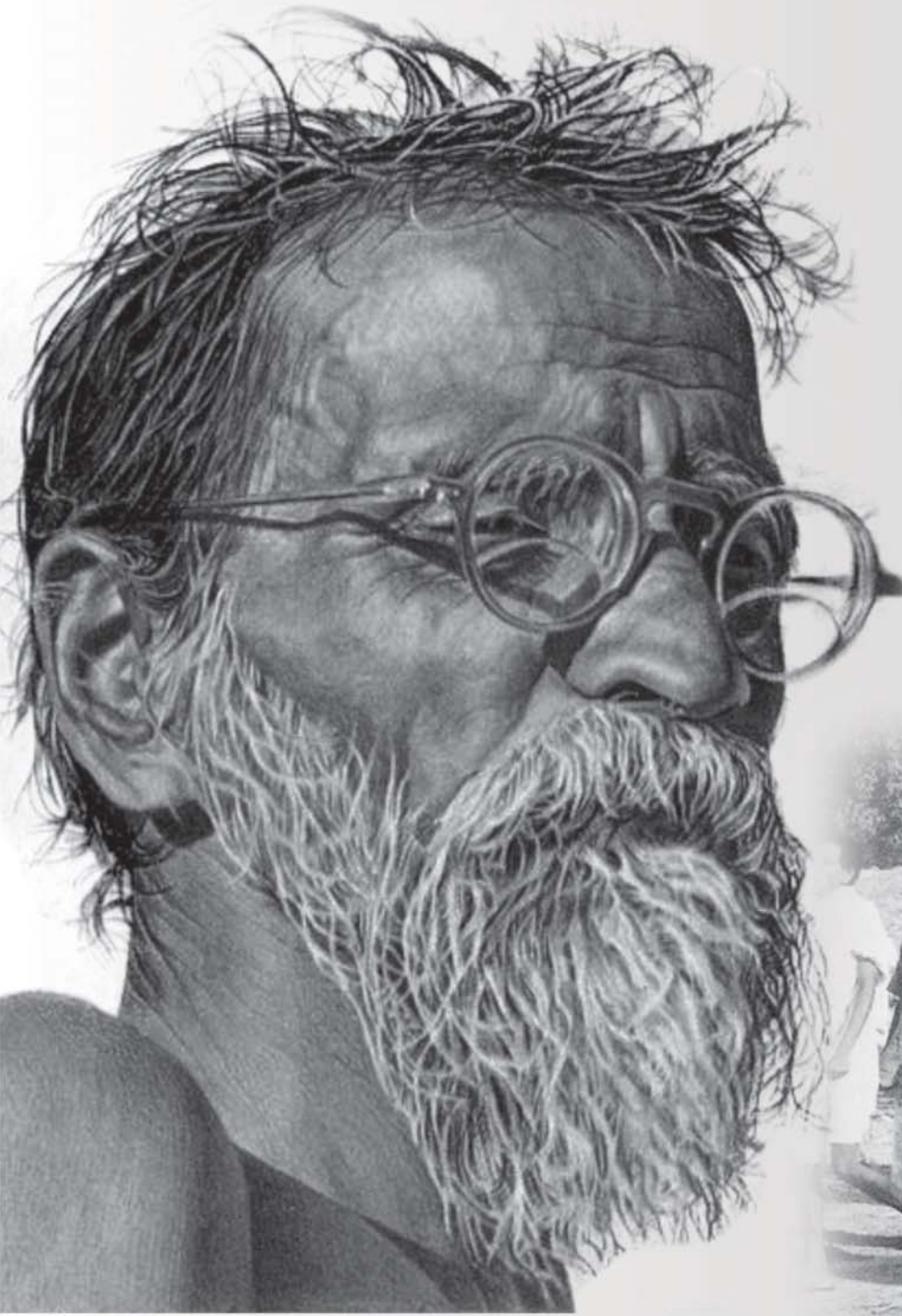
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-02, 01-15 सितम्बर, 2015

सज्जनता बनाम दुर्जनता

आज तो कौरव-पांडव चलता है।
कौरवों के पक्ष में कुछ अच्छे
लोग हैं तो पांडवों के पक्ष में कुछ
बुरे लोग हैं। तो दोनों पक्षों में
अच्छे-बुरे लोग होते हैं और एक
सज्जन के सामने दूसरा सज्जन
खड़ा होता है, यह हालत भी पैदा
नहीं होनी चाहिए। होना यह
चाहिए कि सारे सज्जन एक बाजू
रहें और दुर्जन दूसरी बाजू।
सज्जनता विरुद्ध दुर्जनता,
ऐसा ही होना चाहिए।

—विनोबा



सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रान्ति का संवेद्य वाहक
वर्ष : 39, अंक : 02, 1-15 सितंबर, 2015

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क
मूल्य : पांच रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये
खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1. संपादकीय : विनोबा की विरासत...	2
2. लोक-शक्ति निर्माण व ग्राम-स्वराज्य...	3
3. सर्वोदय का अभिप्राय...	7
4. विपक्ष, विरोध और विसम्पत्ति...	10
5. वन अधिकार कानून का मखौल...	11
6. क्या प्राचीन ग्रीक-लैटिन की भांति...	13
7. आत्म-विश्लेषण के लिए...	15
8. विसंगतियां इतिहास लेखन की...	16
9. गतिविधियां एवं समाचार...	18
10. सत्य-प्रेम-करुणा की शक्ति...	19
11. दो कविताएं...	20

संपादकीय

विनोबा की विरासत

भारत की स्वतंत्रता के बाद, नये भारत एवं नये वैश्विक समाज को बनाने की दिशा में विनोबाजी का अनूठा योगदान रहा है। यदि विनोबाजी न होते तो अहिंसामूलक सत्ता-निरपेक्ष लोकशक्ति एवं लोकसत्ता के निर्माण का काम रुक गया होता। भूदान, ग्रामदान एवं ग्रामस्वराज्य के अभियान ने राष्ट्र में नयी चेतना का संचार किया तथा वैकल्पिक समाज रचना के लिए व्यापक लोकशक्ति भी खड़ी की।

यूं तो विनोबाजी ने कई मोर्चों पर हमें दिशा दी, किन्तु तीन क्षेत्रों में उनका मार्गदर्शन हमारे लिए आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक तो यह कि अध्यात्म और विज्ञान दोनों के समन्वय की बात है। आधुनिक विज्ञान के विकास के कारण बहुत सारे लोगों को लगने लगा था कि इसके साथ अध्यात्म की आवश्यकता नहीं है। विनोबाजी ने यह रेखांकित किया कि विज्ञान के प्रयोग मानव जाति के लिए जरूरी हैं, तो मनुष्य की आत्मिक शक्ति एवं नैतिक शक्ति के लिए अध्यात्म भी मानव जाति के लिए आवश्यक है। नये समाज की रचना के केन्द्र में जो नया मनुष्य होगा वह आत्मिक शक्ति एवं नैतिक मूल्यों से लैस होगा।

विनोबाजी का दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान यह स्थापित करने में था कि अहिंसक आंदोलन द्वारा सम्पत्ति विसर्जन का उद्देश्य हासिल किया जा सकता है। भूदान एवं ग्रामदान आंदोलन उसी दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक कदम थे। जब विनोबाजी यह कहते थे कि 'सबै भूमि गोपाल की', तो उनका मन्तव्य स्पष्ट था। भूमि यानी पृथ्वी, भूमि यानी प्रकृति प्रदत्त जीवन के पोषण के सभी स्रोत, भूमि यानी सम्पूर्ण पर्यावरण। जिस सीमा तक इनमें व्यक्तिगत स्वामित्व आया है, उस व्यक्तिगत स्वामित्व के विसर्जन के लिए अहिंसक आंदोलन हो तथा भविष्य में इन पर व्यक्तिगत स्वामित्व

का दायरा न बढ़े, इसके लिए लोकशक्ति का अंकुश राजशक्ति पर बना रहे।

विनोबाजी ने हमें तीसरा महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया ग्रामस्वराज्य का। नयी वैकल्पिक समाज रचना की बुनियाद ग्रामस्वराज्य ही हो सकती है। इसलिए रचनात्मक कार्यक्रमों का लक्ष्य मुख्य रूप से ग्रामस्वराज्य के लिए ग्राम स्तर पर रचना का कार्य खड़ा करना होगा। अन्य स्तरों के रचनात्मक कार्यक्रम राहत तो प्रदान कर सकेंगे, लेकिन क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं ला सकेंगे। आध्यात्मिक शक्ति, विज्ञान तथा सत्याग्रह के सम्यक् प्रभाव से शोषणकारी, दोहनकारी व्यवस्थाओं का निषेध तथा वैकल्पिक समाज रचना का लोक स्तर से निर्माण—यही विरासत हमें विनोबा से मिली है, जिसे हमें आगे बढ़ाना है।

इन कार्यों को करने के लिए जिस संरचना की परिकल्पना विनोबाजी ने की वे भी अद्भुत हैं। श्रेणीबद्ध संगठन से मुक्ति (असंगठन) एवं सर्वसम्पत्ति के विचार सर्वोदय जमात के लिए सदैव प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। ऐसी संरचना कभी भी बहुमत की निरंकुशता को पनपने नहीं देगी। लेकिन यह सावधानी भी रखनी होगी कि अल्पमत इसका उपयोग अड़ंगा डालने के लिए न करे। अहिंसा, अध्यात्म तथा नैतिक मूल्यों से प्रेरित कार्यकर्ता तो ऐसा नहीं करेंगे। लेकिन राजसत्ता के चरित्र से जो जाने-अनजाने मोहग्रस्त हैं, वे ऐसा जरूर कर सकते हैं। गण-सेवकत्व का विचार हम जितना आत्मसात् कर सकेंगे, उतना ही हम इस विषाणु से बच सकेंगे।

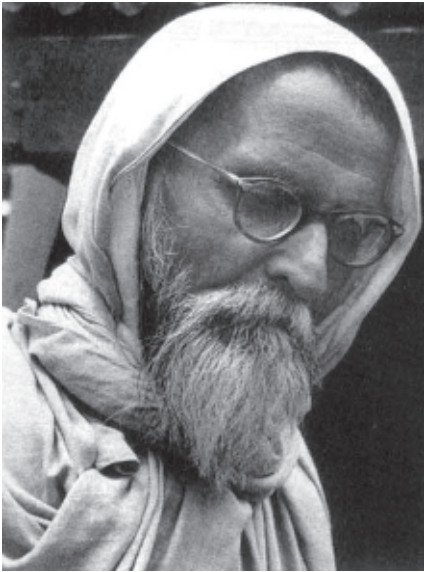
विनोबाजी ने अहिंसा के साथ कभी समझौता नहीं किया। अहिंसा को ढीला कर जो उपलब्धि होगी, वह क्षणिक होगी, और अपने उद्देश्य से भटकाने वाली साबित हो सकती है। आज उनकी विरासत को बढ़ाने वालों को अहिंसा पर दृढ़ होकर ही सत्याग्रह एवं रचना के कार्य को बढ़ाना होगा। आत्मिक शक्ति के बिना यह सम्भव नहीं होगा।

बिमल कुमार

लोक-शक्ति निर्माण

व ग्राम-स्वराज्य

□ विनोबा



लोक-शक्ति-निर्माण

आज की हमारी जो सरकार है, उसके हाथ में हमने दंड-शक्ति सौंप दी है। उस दंड-शक्ति में हिंसा का एक अंश जरूर है, फिर भी हम उसे 'हिंसा' नहीं कहना चाहते हैं। हिंसा से उसको अलग वर्ग में रखना चाहते हैं। हिंसा-शक्ति से भिन्न दंड-शक्ति, हम उसे कहना चाहते हैं, क्योंकि वह शक्ति उनके हाथ में सारे समुदाय ने दी है। इसलिए वह निरी हिंसा-शक्ति नहीं, पर वह दंड-शक्ति है। उस दंड-शक्ति का भी उपयोग करने का मौका न आये, ऐसी परिस्थिति देश में निर्माण करना हमारा काम होगा। वह अगर हम करेंगे तो हमने स्वधर्म पहचाना और उस पर अमल करना जाना, यह माना जायेगा। अगर ऐसा हम नहीं करेंगे और दंड-शक्ति के उपयोग से ही जो जन-सेवा हो सकती है, उस जन-सेवा

का लोभ रखेंगे, तो जिस विशेष कार्य की हमसे अपेक्षा की जा रही है, उस कार्य को, उस अपेक्षा को हम पूर्ण नहीं करेंगे, बल्कि संभव है कि हम बोझ-रूप भी साबित होंगे।

निरंतर, अखंड बहते हुए झरने की तरह सतत घूमने वाले और लोगों के पास सतत विचार पहुंचाने वाले लोग हम में होने चाहिए। इसके बगैर सर्वोदय-समाज काम नहीं कर पायेगा। लोगों के पास पहुंचने के जितने मौके मिलें, उतने हमें प्राप्त करने चाहिए। लोग एक बार कहने पर नहीं सुनते हैं, तो दुबारा कहने का मौका आयेगा, उससे खुशी होनी चाहिए। इतना विचार-प्रचार का उत्साह और इतनी विचार पर श्रद्धा, विचार-निष्ठा हममें होनी चाहिए। लेकिन हमारी हालत ऐसी हुई है कि हममें से बहुत-से लोग भिन्न-भिन्न संस्थाओं में गिरफ्तार हो गये हैं। यद्यपि ये संस्थाएं महत्व की हैं, तो भी हमें संस्था की आसक्ति न हो, भक्ति रहे। उनका काम जारी रखें, लेकिन संस्था में कुछ मनुष्य ऐसे हों, जो घूमते रहें। इस तरह की रचना और ऐसा कार्यक्रम हम नहीं करेंगे, तो हमारा विचार क्षीण होगा और विचार-शासन नहीं चलेगा।

तीसरी शक्ति

जिसको तीसरी शक्ति कहते हैं, वे हम हैं। तीसरी शक्ति का मतलब आज दुनिया की परिभाषा में यह होता है कि जो शक्ति, न अमेरिका के 'ब्लाक' में पड़ती है, न रूस के 'ब्लाक' में पड़ती है; उसको लोग तीसरी शक्ति कहते हैं। लेकिन मेरी तीसरी शक्ति की परिभाषा यह होगी—जो शक्ति हिंसा की शक्ति से विरोधी है अर्थात् जो हिंसा की शक्ति नहीं है, और जो दंड-शक्ति से भी भिन्न अर्थात् जो दंड-शक्ति नहीं है—ऐसी जो शक्ति है उसका नाम है तीसरी शक्ति। एक हिंसा-शक्ति, दूसरी दंड-शक्ति, तीसरी हमारी शक्ति है। वह शक्ति हम व्यापक बनाना चाहते हैं और उसका कोई अलग सम्प्रदाय नहीं बनाना चाहिए।

एक भाई ने सवाल पूछा कि “जहां तक हो सकता है, आप कोशिश करते हैं कि भिन्न-भिन्न पक्षों की और सरकार की जो योजना है,

उनके साथ अधिक-से-अधिक सहयोग कैसे हो, यह बात जंचती नहीं है। जरूरत इस बात की है कि हमारे विचार दूसरे पक्षों के या सरकार के विचारों से कैसे भिन्न हैं और कुछ अंशों में तो विरोधी हैं, यही बात लोगों के सामने अधिक स्पष्ट होनी चाहिए; बजाय इसके कि उनके विचारों के साथ हम अधिक-से-अधिक अपना सहयोग देने की कोशिश करें।”

अपना मार्ग

कुल मिलाकर सरकारी योजना की मेरी सहानुभूति प्रकट होती है, इस तरह का आभास लोगों को आता है और वह सही है। क्योंकि मैं नहीं चाहता कि एक बात को हम बुद्धि-भेद पैदा करके बिगाड़ें। यह शक्ति आज हममें है कि सरकारी योजना को हम नाकामयाब बनाना चाहें तो बना सकते हैं। लेकिन यह कोई बड़ी शक्ति नहीं है। हम अपनी योजना लोगों के सामने रखकर लोगों को उस पर अमल करने के लिए आज राजी करने की शक्ति नहीं रखते या उस प्रोग्राम को लोगों के सामने रखकर हम चुन आयें और हम उस तरह की सरकार बनायें, ऐसी शक्ति आज हम नहीं रखते तो एक बात को बिगाड़ने की शक्ति हम रखते हैं, उसका उपयोग करके लोगों में अश्रद्धा और बुद्धिभेद पैदा हो और जो कुछ उस योजना में अच्छाई है, उस पर भी अमल न हो, यह मैं अहिंसा की दृष्टि से उचित नहीं मानता। हमेशा यह होने ही वाला है कि दंड-शक्ति पर आधारित और प्रचलित परिस्थिति के बहुत आगे न जा सकने वाली सरकार जो योजना करेगी, वह हमारी योजना के अत्यन्त अनुकूल नहीं होगी। उस हालत में उसमें तो अच्छाई रहेगी, उसके साथ अनुमति प्रकट करना और उसके लिए जनता में श्रद्धा बनी रहे, ऐसी कोशिश करना, मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ—एक अहिंसक विचारक के नाते। केवल हम खंडन करते चले जायें तो उसमें से हम कुछ पायेंगे नहीं, हम तो तब पायेंगे जब हमारी योजना चले, इसलिए यह मैं उचित मानता हूँ कि अपनी योजना हम जनता के सामने रखते जायें।

बुनियादी अंतर कहां है?

मैं जानता हूँ, मानता हूँ और कभी-कभी कहता भी हूँ कि सरकार पर पूंजीवादी असर बहुत है। लेकिन वह इस वास्ते नहीं है कि वे पूंजीवाद को चाहते हैं। लेकिन इस वास्ते है कि कुछ तो वे अपने को लाचार समझते हैं और प्रचलित परिस्थिति में पूंजीवादियों की अक्ल और शक्ति का उपयोग करना चाहते हैं। और कुछ तो उनके विचार भी उस वाद के लिए अनुकूल हैं और यह जो मैं कह रहा हूँ वह न सिर्फ अभी की सरकार के चलाने वालों के लिए कहता हूँ, बल्कि कम्युनिस्टों के लिए भी यही कहता हूँ। हमारी योजना में विकेन्द्रीकरण यानी विभाजन है, उत्पत्ति का और बंटवारे का भी। लेकिन कम्युनिस्टों के उत्पादन में विकेन्द्रीकरण का विचार नहीं है। और जो अपने को लेफ्टिस्ट यानी प्रगतिवादी मानते हैं, उनमें और पूंजीवादियों में बहुत फरक नहीं है। हम ही ऐसे हैं, जो पूंजीवाद को किसी तरह से मान्यता नहीं देते हैं।

इस दृष्टि से जब हम सोचते हैं तो उनकी नीयत के बारे में शंका नहीं रख सकते हैं, बल्कि विचार की सफाई हो जाती है। जिस विचार-श्रेणी में और जिस हालत में वे पड़े हैं, उस विचार-श्रेणी में और उस हालत में अगर हम होते तो किस तरह करते, यह जब हम सोचने लगते हैं, तो ऐसा दीख पड़ता है कि करीब-करीब वैसा ही करते, जैसा कि वे आज करते हैं। यह मेरा आज की सरकार के बारे में सर्वसामान्य रुख है। लेकिन इसके साथ-साथ मैंने यह भी स्पष्ट किया है कि हमारी आंखों के सामने एक निश्चित मार्ग है और हमारे पांव तो उसी मार्ग पर चलने चाहिए।

सरकार से सहयोग-तीन दृष्टियां

लोग मुझसे पूछते हैं कि सरकार की योजना में हम कहां तक सहयोग दें और सहयोगिता की वृत्ति रखें। तो मैं कहता हूँ कि सरकार की जो योजना हमको मान्य होगी और सर्वमान्य भी, उसमें हम सहयोग जरूर दे सकते हैं, लेकिन हर हालत में हमें अपने को

मुक्त रखना चाहिए। यह हालत नहीं निर्माण होनी चाहिए कि हमारा कोई एक कम्युनिटी प्रोजेक्ट है और उसमें हमारे हाथ फंसे हैं। वह हमसे जो सलाह-मशविरा करना चाहेंगे, कर सकते हैं। जो कुछ नैमित्तिक मदद पहुंचानी है, वह भी पहुंचा सकते हैं। लेकिन उस तरह की योजना की जिम्मेवारी अगर हम उठाते हैं तो मैं मानता हूँ कि हम गलती करते हैं। लेकिन हमारे सर्वोदय-समाज के लोगों में इस तरह चलता है...और वह ठीक भी है, क्योंकि सर्वोदय-समाज एक मुक्त समाज है, जो हरेक मनुष्य अपना सोच कर करता है—कि हमारे सेवकों में से कम्युनिटी प्रोजेक्ट को कुल मिलाकर अच्छा समझकर कुछ लोग हाथ में लेते हैं। दूसरे कुछ ऐसे हैं, जो इससे बहुत नफरत करते हैं और कहते हैं कि यह देश को बिलकुल ही बरबाद करने वाली है। और तीसरे कुछ ऐसे हैं, जो कहते हैं कि इसमें कुछ अच्छा है, कुछ नहीं भी है। लेकिन हमें उस तरह की योजना करने के लिए अगर सरकार कहती है तो कुछ शर्तें हम सरकार के सामने रखें और उनको वह मंजूर करे तो हम भी अपने ढंग से काम कर सकते हैं।

सज्जनता बनाम दुर्जनता

आज तो कौरव-पांडव चलता है। कौरवों के पक्ष में कुछ अच्छे लोग हैं तो पांडवों के पक्ष में कुछ बुरे लोग हैं। तो दोनों पक्षों में अच्छे-बुरे लोग होते हैं और एक सज्जन के सामने दूसरा सज्जन खड़ा होता है, यह हालत भी पैदा नहीं होनी चाहिए। होना यह चाहिए कि सारे सज्जन एक बाजू रहें और दुर्जन दूसरी बाजू। सज्जनता विरुद्ध दुर्जनता, ऐसा ही होना चाहिए।

पश्चिमी लोकसत्ता की कल्पना

पश्चिम से एक लोकसत्ता आयी है, जो मानती है कि दो पक्ष होने ही चाहिए और उनके सहयोगी संघर्ष से राष्ट्र ठीक रास्ते पर रहता है, दोषों का संशोधन होता है। मैंने कहा है कि हमारा यानी हिन्दुस्तान का सियासी अनुभव हमारी ग्राम-पंचायत में रहा है। जहां

यह उसूल था कि 'पांच बोले परमेश्वर।' पांच बोले परमेश्वर का अर्थ यह होता है कि एक बोले, दो बोले परमेश्वर तो होता ही नहीं, लेकिन तीन या चार बोले परमेश्वर भी गलत है। हमने तो यह माना कि सारे पंचों की एक राय होनी चाहिए। पांचों पंच एक बनायेंगे तब कोई प्रस्ताव पास होगा। इसको मैं पांच बोले परमेश्वर कहता हूँ।

इस विचार से अगर हम काम न करें तो आज जो सारी दुनिया में मैजारिटी, माइनरिटी के सवाल पैदा हुए हैं, वे मिटेंगे नहीं।

ग्राम-स्वराज्य

हमारे देश की विभिन्न अवस्थाएं रही हैं। पहले आजाद गांवों का आजाद देश था। अंग्रेजों के आने के पहले मुसलमानों का राज्य था। तब मुगल राजाओं के समय वह आजाद गांवों का गुलाम देश था। तब देश पराधीन था, लेकिन गांव स्वाधीन थे। गांव-गांव का कारोबार गांव वाले स्वयं चलाते थे। गांव-गांव में ग्राम-पंचायतें काम करती थीं और गांव के बारे में सोचती थीं। सरकार को टैक्स देने तक ही उनका सरकार से संबंध था।

अंग्रेजों के जमाने में गुलाम गांवों का गुलाम देश बना। अंग्रेज यहां आये और उन्होंने यहां की ग्राम-पंचायत और ग्रामोद्योगों को समाप्त कर दिया। हमारी ग्राम-संस्थाएं टूट गयीं। परिणाम यह हुआ कि देश तो पराधीन बना ही, गांव भी पराधीन बन गये। पराधीन गांवों का पराधीन देश हो गया।

पुरानी ग्राम-व्यवस्था

ईस्ट इंडिया कंपनी के लोग बंगाल में आये और वहां पर उन्होंने हर गांव का सर्वे किया। यह सर्वे सारा लिख रखा है विस्तार से और उसकी किताबें छपी हैं। उनमें से कुछ हमें देखने को मिली थीं। बिल्कुल छोटे-छोटे गांवों में वे लोग गये थे।

उनके रेकार्ड में लिखा हुआ है कि बंगाल में हर 400 मनुष्यों के पीछे एक स्कूल है। मैं अपने मन में सोचता था कि 400 मनुष्यों के पीछे एक स्कूल, यानी

लगभग हर गांव में स्कूल था। यह ठीक है कि शिक्षा की पद्धति पुरानी थी। उस जमाने में जो पद्धति थी, उससे शिक्षा मिलती थी। लेकिन उस समय भारत निरक्षर था, यह गलत है।

अलावा इसके, महाराष्ट्र में तो विद्यार्थियों को और तीन-चार बातें सीखनी पड़ती थी—घोड़े पर बैठना, तैरना, पेड़ों पर चढ़ना-उतरना—ये बातें हर एक को सिखायी जाती थीं। बाकी विद्या काम करते-करते हासिल की जाती थी। गांव में धंधे मौजूद थे, खेती-बारी तो थी ही। उनकी विद्या काम करते ही आ जाती थी। अर्थात् यह विद्या क्रियाशील विद्या थी। तात्पर्य यह कि उस जमाने में लोग अशिक्षित नहीं थे।

गांव-गांव में ग्राम-पंचायतें थीं। उनकी प्रवृत्तियों में एक प्रवृत्ति थी—स्कूल चलाने की। दूसरा न्याय, तीसरा व्यवस्था करना आदि, ये प्रवृत्तियां थीं। और गांव में जितने काम चलते थे, उनके लिए थोड़ा-थोड़ा हिस्सा हर किसान से मिलता था। बहुत बड़ी ग्रामीण योजना थी। जमीन व्यक्तिगत नहीं थी। जैमिनी के मीमांसाशास्त्र में स्पष्ट कहा है कि जमीन की मालिकी भगवान की है, जो खेती करेगा, उसकी है; राजा की नहीं। तो ग्राम पंचायत की व्यवस्था में एक यह बात थी कि फसल आयेगी, तो उस पर सबका हक है। वैद्य, बढ़ई, कुम्हार, चमार, बुनकर आदि सबकी सेवाएं गांव की मानी गयी थीं। जितने ग्रामोद्योग करने वाले थे, वे गांव के सेवक थे, किसी घर के नौकर नहीं। यह सारी व्यवस्था देखने की जिम्मेवारी ग्रामपंचायत की थी। इसका थोड़ा वर्णन एनी बेसेन्ट की किताब में पढ़ने को मिलता है।

गांव का सारा कारोबार ग्राम पंचायत देखती थी। गांव की तरफ से ग्राम पंचायत को अच्छी आमदनी होती थी। क्योंकि गांव में काफी अच्छे धंधे चलते थे। गांव की आवश्यकता की चीजें गांव में ही पैदा होती थीं। व्यक्तिगत मालिकी नहीं थी। सब मिलकर काम करते थे। बढ़ई को मजदूरी नहीं मिलती थी, हर घर से उसे अनाज का थोड़ा हिस्सा

मिलता था। किसी घर में ज्यादा काम हो या किसी घर में कम, तो भी उसे निश्चित हिस्सा ही दिया जाता था। इसी तरह वैद्य, शिक्षक और दूसरे कारीगरों की भी योजना थी। यानी, आज की भाषा में बोलना हो, तो वह एक प्रकार की सेवा मानी जाती थी। तमिलनाडु से कश्मीर तक हमारे गांवों में यही योजना थी।

ग्राम-संस्थाएं तोड़ी गयीं

गांवों के धंधे खत्म कर दिये गये, इसलिए सारी ग्राम-संस्थाएं टूट गयीं। धंधे यूं ही खत्म नहीं हुए, खत्म करने की योजना से खत्म किये गये। सेलम (तमिलनाडु) का जिला-गजट पढ़ा। उसमें लिखा था कि वहां के बुनकरों का धंधा धीरे-धीरे टूटता गया। संस्कृत भाषा में 'सेलम' का अर्थ ही कपड़ा होता है।

भारत पर अनेकों ने हमले किये; लेकिन ग्राम-व्यवस्था टूटी नहीं। अंग्रेजों ने वह काम किया और उसमें वे सफल हुए। उन्होंने गांव का सर्वे इसलिए किया कि गांव में क्या-क्या कच्चा माल होता है यह देखकर अपने देश में भेजना और वहां से पक्का माल लाना। इस तरह वे अपना व्यापार बढ़ाना चाहते थे। उससे गांव के उद्योग खत्म हुए। गांव केवल कच्चा माल पैदा करने वाले रहें यह सारा अंग्रेजों के आने के बाद हुआ।

गांव के उद्योग खत्म हो गये, तो ग्राम पंचायत टूट गयी और देखते-देखते देहातों की हालत यह हो गयी कि वे निरक्षर हो गये। जो लोग कुछ थोड़ा-सा शिक्षण पा सके, वे देहात को छोड़कर शहरों में चले गये और सारे गांव शिक्षणहीन, ज्ञानहीन, संपत्तिहीन बन गये। नतीजा यह हुआ कि दिन-ब-दिन गांवों की हालत दुःखदायक होती गयी और सिवा भूमि के अन्य कोई आधार ग्रामीणों के पास नहीं रहा। और भूमि की हालत भी अजीब-सी हो गयी। गरीब लोग काश्त करते थे, साथ-साथ कई उद्योग भी करते थे। लेकिन ग्रामोद्योग खत्म हो गये और खेती पर ही दारोमदार आ गया। तब तक छोटे-छोटे लोग खेती न कर सके और उनके ऊपर कर्जा होने लगा। फिर अंग्रेजों के कानून से मालिकी आयी थी,

इसलिए साहूकारों के घरों में उनकी भूमि जा पहुंची। इस तरह जमीन की मालिकी धीरे-धीरे चंद लोगों के हाथ में चली गयी।

अंग्रेजी-राज आने के बाद गांव की सामुदायिक योजना टूट गयी। पुरानी सभ्यता टूट गयी। यहां का ग्राम-जीवन अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो गया। अब हमें टूटी हुई ग्राम-संस्था को पुनः खड़ा करने की प्रतिज्ञा लेनी होगी।

मिट्टी का सुवर्णकलश!

देश का स्वराज्य आया, लेकिन गांवों का नहीं आया। इसलिए आज हमारा देश गुलाम गांवों का बना आजाद देश है!

आज स्वराज्य के बाद गुलाम गांवों का आजाद देश है। अंग्रेजों के जाने के बाद देश तो स्वाधीन हुआ, लेकिन गांव तो अभी भी पराधीन-के-पराधीन ही रहे हैं। आज हमारा पराधीन गांवों का स्वाधीन देश है।

अब हमें फिर से वही स्थिति लानी है कि हमारा देश आजाद गांवों का आजाद देश बन जाये। देश भी स्वाधीन हो और गांव भी स्वाधीन हों।

सैकड़ों वर्षों से यह हालत नहीं आयी। मुसलमानों के आने से पहले यह हालत थी, लेकिन उस जमाने में इतना बड़ा एक देश नहीं था, छोटी-छोटी जमातें थीं। लेकिन वे भी स्वाधीन थीं और गांव भी स्वाधीन थे। यह पुराने वैदिक काल की बात है। आज हमको फिर से वह अवस्था लानी है। पराधीन गांवों को स्वाधीन बनाना है और देश की स्वाधीनता भी कायम रखनी है।

आज हम पराधीन गांवों के देश को स्वाधीन कहते हैं। जैसे किसी मिट्टी के पात्र को स्वर्ण-कलश कहना! एक बार एक साहित्यकार के साथ बात करते हुए मैंने कहा था कि हमारा देश मिट्टी का बनाया हुआ सुवर्ण-कलश है! अब मिट्टी का बना हुआ है, तो सुवर्ण-कलश कैसे? और सुवर्ण-कलश है, तो मिट्टी का कैसे? मिट्टी का बनाया हुआ सुवर्ण-कलश! अब हमें उसे सोने का बना हुआ सुवर्ण-कलश बनाना है। स्वाधीन गांवों का स्वाधीन देश करना है। गांव-गांव

ग्रामस्वराज्य स्थापित करके हम इस दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

स्वराज्य गांव तक पहुंचे

एक था गांव। वहां कसाई लोग रहते थे। वे बकरे को 'शेफील्ड' की छुरी से काटते थे। फिर स्वराज्य आ गया, तो तय हुआ कि अब 'शेफील्ड' की नहीं, अलीगढ़ की छुरी से बकरे काटे जायेंगे। फिर भी, बकरे चिल्लाते ही रहे। कसाई कहने लगा—“मूर्ख, अब क्यों चिल्लाता है? अब तो शेफील्ड की नहीं, अलीगढ़ की छुरी से काटा जा रहा है!” क्या यह सुनकर बकरा खुश होगा? सारांश, स्वराज्य दिल्ली में आ जाने भर से कुछ नहीं बनता।

मैं धूप में घूम रहा हूँ, बहुत प्यास लगी है, बहुत दुःखी हो रहा हूँ। एक पेड़ के नीचे प्यास के मारे बैठ जाता हूँ। मित्र कहता है, “अरे, नदी पांच मील की दूरी पर भी नहीं है।” थोड़ा चल लेता हूँ। मित्र फिर से कहता है, “अरे, अब तो नदी दो मील की दूरी पर ही है। क्यों रोता है? पहले पांच मील पर थी तब रोते थे, तब तो ठीक था, लेकिन अब तो दो मील पर ही है।”

पर नदी पांच मील की दूरी पर से दो मील की दूरी पर रह जाये, तो क्या उससे प्यास बुझ जायेगी? प्यासे को तभी समाधान होगा, जब पानी पेट में जायेगा। वह दस हाथ की दूरी पर हो, तो भी उसे समाधान नहीं होगा। इसी तरह जब सब लोगों के अनुभव में स्वराज्य आयेगा, तभी गांव-गांव में स्वराज्य आयेगा।

आज गांव का स्वराज्य कहां है? आज तो स्वराज्य का पार्सल लंदन से दिल्ली तक आया है और अधिक-से-अधिक दिल्ली से मद्रास तथा शायद मदुरै तक आया हो। अभी स्वराज्य का पार्सल गांव-गांव तक नहीं पहुंचा है। जब तक गांव-गांव स्वराज्य नहीं पहुंचेगा, तब तक मद्रास-मदुरै में स्वराज्य आ जाने पर भी उससे गांव वालों को क्या लाभ होगा?

गांवों के आधार पर सारा देश खड़ा है। किन्तु आज तो ऐसा नहीं लगता कि गांवों के आधार पर देश खड़ा है। बल्कि, उलटा ही

भास होता है कि दिल्ली के आधार पर देश खड़ा है। ये लोग समझते हैं कि दिल्ली के आधार पर पटना है, पटने के आधार पर दरभंगा है और दरभंगे के आधार पर ये पंचायतें हैं और पंचायतों के आधार पर लोग हैं। यह बिल्कुल उलटी कल्पना है। वास्तव में, स्थिति यह है कि लोगों के आधार पर पंचायत, पंचायतों के आधार पर दरभंगा, दरभंगे के आधार पर पटना, पटने के आधार पर दिल्ली है।

यह अपना चार-पांच तल्ले वाला मकान है। इसका सबसे नीचे वाला तल्ला जनता है और सबसे ऊपर का तल्ला है दिल्ली। मान लीजिए, ऊपर का तल्ला—दिल्ली—मजबूत रहा, लेकिन नीचे का तल्ला अगर कमजोर रहा, तो वह तो गिरेगा ही, ऊपर का ही सारा-का-सारा गिरेगा। यह अच्छी तरह समझने की जरूरत है कि देहात को जितना दिल्ली का आधार है, उससे ज्यादा देहात का आधार दिल्ली को मिलता है। वह मिलेगा तभी दिल्ली टिकेगी, नहीं तो वह टिकने वाली नहीं। नीचे से दिल्ली को आधार नहीं मिलेगा, तो दिल्ली बिल्ली बन जायेगी। उसमें कोई ताकत नहीं रहेगी।

तिलकजी ने मंत्र दिया कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और वह हम लेकर रहेंगे।' उसके बाद गांधीजी आये। उन्होंने उसके लिए कार्यक्रम दिया। इस तरह तिलक का मंत्र और गांधीजी का तंत्र, दोनों मिलकर स्वराज्य खड़ा हो गया।

अब इतने साल के अनुभव के बाद ध्यान में आया कि स्वराज्य दिल्ली में तो आया। लंदन में था उसके बदले दिल्ली में राज आया। पहले लंदन में फैसला होता था, उसके बदले अब आखिरी फैसला दिल्ली में होता है। तो, स्वराज्य लंदन से दिल्ली पहुंच गया। इसका नाम भारतीय स्वराज्य है।

पहले का मंत्र था—'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' अब नया मंत्र आ गया है—'ग्रामस्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे हम लेकर रहेंगे।' यह

नया मंत्र अभी काम कर रहा है। वह देश के सामने खड़ा हो गया है।

मान लीजिए, दिल्ली में सूर्योदय हो गया और वहां से आपके गांव में तार आ गया कि यहां सूर्योदय हो गया। आप कहेंगे कि भाई, सूर्योदय जब तक हमारे गांव में नहीं होता, तब तक दिल्ली का सूर्योदय हमारे किस काम का है? इसलिए सूर्योदय तो तब मानेंगे, जब हमारे गांव में हर घर के सामने सूर्य नारायण खड़ा होगा और उसकी किरणें प्रत्येक घर में प्रवेश करेंगी।

ठीक उसी प्रकार से हमको समझना चाहिए कि स्वराज्य का अनुभव गांव-गांव को हो। गांव को लगे कि हमारे गांव में स्वराज्य है। पर इसकी क्या पहचान है? हमने पहचान यह निकाली कि देश के अंदर का झगड़ा दिल्ली के बाहर नहीं जाता, लंदन में नहीं जाता, यह देश आजाद हुआ इसका चिह्न है, निशानी है। 'गांव आजाद हुआ, गांव में स्वराज्य हुआ', इसकी क्या निशानी होगी? यह कि गांव का कोई भी झगड़ा गांव के बाहर नहीं जाता। गांव में सब लोग इकट्ठा हो करके अपने जो भी झगड़े होंगे, उनका फैसला खुद कर लेते हैं। यह ग्रामस्वराज्य का चिह्न है।

मकान का ऊपर का तल्ला यदि कमजोर है, तो काम चल जायेगा। लेकिन नीचे का तल्ला कमजोर रहेगा, तो सारा मकान ढह जायेगा।

गांव के लड़के, गांव के बैल, गांव के मजदूर, सब कमजोर रहेंगे, तो फसल कैसे बढ़ेगी? शहर में भी दूध, घी, अनाज, सब्जी, फल वगैरह गांव से ही जाते हैं। इन सबको पैदा करने वाले ग्रामीण ही यदि दुर्बल बनते हैं, तो शहर भी दुर्बल बनेगा। अच्छा किसान खुद को फाका करना पड़े तो कर लेता है, लेकिन बैल को खिलाता है। वह जानता है कि बैल कमजोर पड़ेंगे, तो उसकी खेती नहीं चलेगी। तो, किसान को बैल की जितनी चिन्ता रहती है, उतनी चिन्ता शहर वालों को गांव की होनी चाहिए। गांव मजबूत रहेगा तभी शहर टिकेगा और देश भी टिकेगा। ग्राम-स्वराज्य पर ही देश के स्वराज्य का आधार है। □

(स.ज. 1-15 सितंबर, 1982 से)

गतांक से आगे

सर्वोदय का अभिप्राय

सर्वोदय में से सत्य और अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अस्वाद, सर्वधर्म-समन्वय और श्रम की प्रतिष्ठा, अभय और स्वदेशी आदि व्रत स्वतःस्फूर्त होते हैं। अभी तक इन व्रतों का स्थान व्यक्तिगत मूल्यों के रूप में ही था। बापू ने सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन की साधनाओं को एक में मिलाकर इन व्रतों को सामाजिक मूल्यों का रूप दिया। ज्यों-ज्यों हम इन व्रतों को सामाजिक मूल्य बनाते जायेंगे, त्यों-त्यों सर्वोदय का विकास होता जायगा।

माक्स ने इनसे एक कदम आगे बढ़कर अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value.) दिया। उसने कहा कि श्रम का जितना मूल्य होता है, वह मुझे मिलता ही नहीं। मुझे जिन्दा रखने के लिए जितना जरूरी है, सिर्फ उतना ही तो मुझे मिलता है। बाकी का तो मालिक ही हड़प जाता है। श्रम का यह बचा हुआ मूल्य ही शोषण (Exploitation) है। और इसका नतीजा यह होता है कि सौ में नब्बे आदमियों को काम-ही-काम रहता है और दस आदमियों को आराम-ही-आराम! दस आदमी विश्रामजीवी बन जाते हैं और नब्बे आदमी श्रमजीवी। हराम की कमाई का निराकरण होना ही चाहिए।

× × ×

पूँजीवादी अर्थशास्त्र की मान्यता है—
मेहनत मजदूर की, सम्पत्ति मालिक की।

पूँजीवाद का जन्म होता है—सौदे से, विकास होता है—सट्टे से और वह चरम सीमा पर पहुँचता है—जुए से।

पूँजीवाद के तीन दोष हैं :

सौदा, सट्टा और जुआ।

इससे तीन बुराइयाँ पैदा होती हैं :

संग्रह, भीख और चोरी।

पूँजीवाद के दोषों का निराकरण करने के लिए आया—समाजवाद। समाजवादी अर्थशास्त्र की मान्यता—मेहनत जिसकी, संपत्ति उसकी। मार्क्स यहीं तक नहीं रुका। उसने एक और सूत्र दिया—मेहनत हरएक की, सम्पत्ति सबकी। इसकी बदौलत Welfare State (कल्याणकारी राज्य) और State Capitalism (शासकीय पूँजीवाद) का जन्म हुआ। व्यक्ति की साहूकारी मिटी, समाज की साहूकारी शुरू हुई।

× × ×

समाजवाद के आगे एक सूत्र और है। और वह यह कि जितनी ताकत उतना काम, जितनी जरूरत उतना दाम। 'परिश्रम तो मैं उतना करूँ, जितनी मुझमें क्षमता है, पर उस परिश्रम का प्रतिमूल्य, उसका मुआवजा मैं उतना ही लूँ, जितनी मेरी आवश्यकता है।'

यह सूत्र है तो बहुत अच्छा, पर इसके कारण अन्तर्विरोध पैदा होता है। 'मेहनत जिसकी, सम्पत्ति उसकी' और 'जितनी ताकत उतना काम, जितनी जरूरत उतना दाम'— इन दोनों सूत्रों में मेल ही नहीं बैठता।

'जब मुझे मेरी आवश्यकता के अनुसार ही पैसा मिलना है, तो मैं उतना ही काम करूँगा, जितने में मेरी जरूरत हो जाय; फिर मैं अपनी शक्ति और क्षमता का पूरा उपयोग क्यों करूँ?' यह विषम समस्या उत्पन्न हुई। काम के अनुसार दाम देने से प्रतिद्वन्द्विता आ खड़ी हुई। रूस और चीन में इस सम्बन्ध में प्रयोग हुए और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रतिद्वन्द्विता से तो स्थिति और अधिक विषम हो जायेगी। इसलिए प्रतिस्पर्धा तो न चले, परिस्पर्धा चल सकती है। दूसरे की टाँग

खींचकर, उसे गिराकर स्वयं आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा रोकी जाय, उसके स्थान पर ऐसी समाजवादी परिस्पर्धा चले कि जो सर्वोत्कृष्ट हो, उसकी बराबरी करने की अन्य सब लोग चेष्टा करें। इसका नाम है Socialistic Emulation (समाजवादी परिस्पर्धा)। किन्तु इसमें भी कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला। पहले जहाँ दाम के लिए काम करने की गुलामी (Wage Slavery) थी, वहाँ अब आ गया काम के मुताबिक दाम (Wages according to work)!

रूस और चीन की गाड़ी यहाँ आकर अटक जाती है। प्रयोग हो रहे हैं, परन्तु समाजवादी प्रेरणा (Socialistic incentive) की समस्या विषम रूप से सामने आकर खड़ी है।

× × ×

आज सेना का सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गया है। मार्क्स ने सेना और शस्त्र के निराकरण की प्रक्रिया का पहला कदम यह बताया कि 'सेना मत रखो, शस्त्र मत रखो, सबको शस्त्र बाँट दो। नागरिक को ही सैनिक बना दो। सैनिक और नागरिक के बीच का अन्तर मिटा दो। उत्पादक और अनुत्पादक के बीच कोई भी भेद मत रखो।' आज विश्व के महान-से-महान राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि शस्त्रीकरण की होड़ से विश्व सर्वनाश की ही ओर जा रहा है। इसलिए अब निःशस्त्रीकरण होना चाहिए। आज के युग की यह मांग है कि निःशस्त्रीकरण के सिवा अब मानवीय मूल्यों की स्थापना हो नहीं सकती। आइसनहावर के शब्दों में Disarmament has become a necessity of life. (निःशस्त्रीकरण जीवन की एक आवश्यकता बन गया है।)

पहले वीर-वृत्ति के विकास के लिए और निर्बलों के संरक्षण के लिए शस्त्र का प्रयोग होता था। आज शस्त्र में से उसके ये दोनों सांस्कृतिक मूल्य नष्ट हो चुके हैं। हवाई जहाज के बम फेंक देने में कौन-सी वीर-वृत्ति रह गयी है? आज संरक्षण के स्थान पर आक्रमण के लिए शस्त्रों का प्रयोग होता है।

इसलिए शस्त्र का सांस्कृतिक मूल्य पूर्णतः समाप्त हो गया है।

× × ×
शस्त्र की जो हालत है, वही हालत यंत्र की भी है। यंत्र का भी सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गया है। यंत्र की विशेषता यह है कि वह सब चीजें एक-सी बनाता है। बटन एक-से, जूते एक-से, पोशाक एक-सी। 'गधा-मजूरी' रोकने को यंत्र आया, पर आज उसके चलते व्यक्तित्व का गला घुट रहा है। मानवीय मूल्यों का हास हो रहा है। बटन दबाने का अर्थशास्त्र (Push Button Economy) विकसित हो रहा है और मानवीय कला समाप्त होती चल रही है। यंत्र जहाँ तक अभाव की पूर्ति करता है, वहाँ तक तो उसकी उपयोगिता मानी जा सकती है, पर वह केन्द्रीकरण को जन्म दे रहा है, कला की अभिवृद्धि में रोड़े अटका रहा है और उत्पादन में से मानवीय स्पर्श (Human touch in Production) को समाप्त करता जा रहा है। व्यक्तित्व का विकास तो दूर रहा, उसके कारण मनुष्य का व्यक्तित्व ही समाप्त होता जा रहा है। व्यक्तित्व का यह विलीनीकरण (De-individualisation) यंत्र का सबसे भयंकर अभिशाप है। इसका निराकरण होना ही चाहिए।

पूँजीवादी उत्पादन का एकमात्र लक्ष्य होता है पैसा। यह उत्पादन मुनाफे के लिए, विनिमय के लिए ही होता है। मैंने जो रकम लगायी, वह कुछ मुनाफे के साथ मुझे वापस मिले, यही उसका उद्देश्य है। यह है मुनाफे के लिए उत्पादन—(Production for Profit)। बाजार की पकौड़ियाँ भले ही खाने लायक न हों, पर यदि उनका पैसा वसूल हो जाय, तो उनका उत्पादन सफल माना जाता है।

छात्रावास में जितने लड़के रहते हैं, उतने लड़कों के हिसाब से ही रोटियाँ बनायी जाती हैं, यह उपभोग के लिए उत्पादन (Production for Consumption) है, पर इसमें इस बात के लिए गुंजाइश नहीं कि किसी के दाँत यदि गिर गये हैं, तो क्या हो?

यान्त्रिक उत्पादन में तीन प्रेरणाएँ थीं : व्यापारवाद (Commercialism), साम्राज्यवाद (Imperialism) और उपनिवेशवाद (Colonialism)।

पर आज की जागतिक स्थिति ऐसी है कि ये तीनों प्रेरणाएँ समाप्ति पर हैं। आज बाजारों का अर्थशास्त्र समाप्त हो रहा है, साम्राज्यवाद मिट रहा है और उपनिवेशवाद अन्तिम साँसें ले रहा है।

× × ×
आज गति का तत्त्व (Dynamics) बाजार से उठकर वैचारिक क्षेत्र में आ गया है। विश्व में आज दो मोर्चे हैं—एक कम्युनिस्टों का मोर्चा, दूसरा उनका विरोधी। लोकशाही कम्युनिज्म का विरोध करते-करते पूँजीवाद के शिविर में जा पहुँची है। वह तलवार की दासी और वैभव की अधिकारिणी बन गयी है। उसकी प्रगति कुंठित हो रही है। जनता को अच्छा भोजन, वस्त्र और मकान देना ही कल्याणकारी राज्य का अन्तिम लक्ष्य बन गया है। लोकशाही बहुमत के आधार पर चलती है, इसलिए सत्ता की प्रतिस्पर्धा उसका मूलमन्त्र बन बैठी है। इस सत्ता के लिए, अधिकार के लिए बड़ी-बड़ी लम्बी गोटियाँ फेंकी जाती हैं, चुनावों के लिए बड़ी दूर से पेशबन्दियाँ की जाती हैं, दुनियाभर के प्रपंच रचे जाते हैं, लोकप्रियता का नीलाम होता है और पार्टी के अनुशासन के नाम पर लोगों की जबान पर ताला डाल दिया जाता है।

आज की लोकशाही में तीन भयंकर दोष हैं : अधिकार का दुरुपयोग (Abuse of Power), गुंडाशाही का भय (Chaos) और भ्रष्टाचार (Corruption)।

इन दोषों का निराकरण किये बिना सच्ची लोकनीति का विकास हो नहीं सकता। भारत की लोकशाही में इनके अलावा 'सम्प्रदायवाद' और 'जातिवाद' नामक दो दोष और भी हैं। देश के और समाज के कल्याण के लिए इन सभी दोषों का उन्मूलन परम आवश्यक है।

× × ×
प्रश्न है कि जहाँ लोकशाही असफल हो रही है, शस्त्र-सत्ता, धन-सत्ता असफल हो रही है, यन्त्र और विज्ञान घुटने टेक रहा है, वहाँ मानवता के त्राण का कोई उपाय है क्या? सर्वोदय इसी का उपाय है।

मानव जिन प्रक्रियाओं का, जिन पद्धतियों का प्रयोग कर चुका है, उनके आगे का कदम है—सर्वोदय।

सृष्टि जिस रूप से हमारे सामने है, उसे समझने की चेष्टा दार्शनिक ने की। वैज्ञानिक ने प्रकृति के नियमों का साक्षात्कार किया, शोध की। परन्तु विश्व को परिवर्तित करने का कार्य न तो दार्शनिक ने किया और न वैज्ञानिक ने। अर्थशास्त्री ने भी वह कार्य नहीं किया। वह किया राज्यनेता ने—जो न तो दार्शनिक ही था, न वैज्ञानिक। जो लोग दर्शनमूढ़ थे, विज्ञानमूढ़ थे, उन्होंने ही समाज और सृष्टि को बदलने का काम अपने हाथ में लिया। परिणाम? परिणाम यही है कि आज दार्शनिक अलग है, वैज्ञानिक अलग है, नागरिक अलग है। परन्तु ऐसा विभाजन-भेद गलत है, कृत्रिम है, अवैज्ञानिक है, अप्राकृतिक है। इस द्वैत में से अद्वैत का, इस भेद में से अभेद का निर्माण हो नहीं सकता। और जब तक अद्वैत और अभेद की स्थापना नहीं होती, समग्रता की दृष्टि से मानव के व्यक्तित्व के विकास की चेष्टा नहीं की जाती, तब तक न तो ये भेद मिटनेवाले हैं और न सच्ची लोकसत्ता का निर्माण होनेवाला है।

× × ×
भेद की भाव-भूमि पर राज्यशास्त्र और अर्थशास्त्र का जो विकास हुआ है, उसके दोष आज हमारी आँखों के समक्ष मौजूद हैं। मार्क्स, लेनिन, माओ आदि क्रान्तिकारियों ने जो क्रान्तियाँ कीं, उनके कारण कई महत्वपूर्ण बातें हुईं। जैसे—रूस, चीन आदि में सामन्तशाही और पूँजीवाद की समाप्ति, उत्पादन के साधनों का समाजीकरण, किसानों और मजदूरों की स्थिति में आश्चर्यजनक

परिवर्तन तथा अपने-अपने देश के पद में अभूतपूर्व उन्नति आदि। अन्य राष्ट्रों की आजादी की लड़ाई को भी इन क्रान्तियों से बड़ा बल मिला है।

परन्तु इतना सब होने पर भी, इन क्रान्तियों का प्रभाव केवल भौतिक धरातल तक ही रहा है। इनके कारण मानव की भौतिक स्थिति में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। माना कि जनता की आर्थिक स्थिति में प्रशंसनीय सुधार हुआ है, परन्तु क्या भौतिक उन्नति ही मानव का सर्वोच्च लक्ष्य है? उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, उत्तम मकान और उत्तम रीति से अन्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही क्या मानव का चरम उद्देश्य है?

सर्वोदय कहता है—नहीं। केवल भौतिक उन्नति ही पर्याप्त नहीं है। वह क्रान्ति ही क्या, जिसमें मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति न हो? वह क्रान्ति ही क्या, जिसमें मानवता का नैतिक स्तर ऊपर न उठे?

सर्वोदय कहता है—‘जो तोकूँ काँटा बुवै, ताहि बोउ तू फूल!’ पत्थर का जवाब पत्थर से देने में, अत्याचार का प्रतिकार अत्याचार से करने में, खून के बदले खून बहाने में कौन-सी क्रान्ति है? क्रान्ति तो है दुश्मन को गले लगाने में, क्रान्ति तो है अत्याचारी को क्षमा करने में, क्रान्ति तो है गिरे हुए को ऊपर उठाने में।

और इस क्रान्ति का साधन है—हृदय-परिवर्तन, जीवन-शुद्धि, साधन-शुद्धि और प्रेम का अधिकतम विस्तार।

× × ×

सर्वोदय जिस क्रान्ति का प्रतिपादन करता है, उसके लिए जीवन के मूल्यों में परिवर्तन करना होगा। उसके लिए हमें द्वैत से अद्वैत की ओर, भेद से अभेद की ओर बढ़ना पड़ेगा। ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ की अनुभूति करनी होगी। बाहरी भेदों से दृष्टि हटाकर भीतरी एकत्व की ओर मुड़ना पड़ेगा। प्राणिमात्र में, जगत् के कण-कण में एक ही सत्ता के दर्शन करने होंगे।

‘सोऽहम्’ और ‘तत्त्वमसि’ के हमारे आदर्शों में सर्वोदय की ही भावना तो भरी पड़ी है। उपनिषद् कहता है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं

रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वं भूतान्तरात्मा रूपं

रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं

रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं

रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

और जब हम इस प्रकार ‘ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्’ मानने लगेंगे, तो हमारी दृष्टि ही बदल जायगी। फिर न तो किसी से द्वेष करने का प्रसंग उठेगा, न किसी से मत्सर। किसी को सताने, किसी का शोषण करने, किसी के प्रति अन्याय करने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। ‘जो तू है, वही मैं हूँ!’ यह भाव आते ही सारे भेदभाव दूर खड़े झूठे झूठे मारेंगे। घर में, परिवार में हम जैसे प्रेम से रहते हैं, हँसते-हँसते जैसे दूसरों के लिए कष्ट उठाते हैं, हर व्यक्ति की सुख-सुविधा का जैसे ध्यान रखते हैं, वैसे ही हम सारे विश्व का, मानवमात्र का, प्राणिमात्र का ध्यान रखेंगे। ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की भावना हमारी रग-रग में भिद जायगी।

× × ×

सर्वोदय मानवीय विभूति के विज्ञान में विश्वास करता है। मानव भी उसके लिए विभूति है, सृष्टि भी, देश-काल भी। वह मानता है—फलनिरपेक्ष कर्तव्य हमारा धर्म है। उसकी मान्यता है—मेहनत इन्सान की, दौलत भगवान् की। मेहनत करना हमारा कर्तव्य है, फल समाज का। ‘समाजाय इदं न मम’ और ‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः’ उसका आदर्श है। वह पड़ोसी के लिए जीने की, पड़ोस के लिए उत्पादन करने की और पड़ोसी का सुख-दुःख बाँटने की कला सिखाता है। वह यह मानता है कि हर बुरे आदमी में अच्छाई होती है। वह हर व्यक्ति के दैवी तत्त्वों

के विकास में विश्वास करता है। उसकी मान्यता है कि पाप से घृणा करनी चाहिए, पापी से नहीं। उसकी दृष्टि में कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं; कोई ऊँचा नहीं, कोई नीचा नहीं। सबका सर्वाङ्गीण विकास उसका लक्ष्य है और प्राणिमात्र से तादात्म्य उसका साधन।

× × ×

सर्वोदय में से सत्य और अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अस्वाद, सर्वधर्म-समन्वय और श्रम की प्रतिष्ठा, अभय और स्वदेशी आदि व्रत स्वतःस्फूर्त होते हैं। अभी तक इन व्रतों का स्थान व्यक्तिगत मूल्यों के रूप में ही था। बापू ने सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन की साधनाओं को एक में मिलाकर इन व्रतों को सामाजिक मूल्यों का रूप दिया। ज्यों-ज्यों हम इन व्रतों को सामाजिक मूल्य बनाते जायेंगे, त्यों-त्यों सर्वोदय का विकास होता जायगा।

(दादा धर्माधिकारी द्वारा लिखित ‘सर्वोदय-दर्शन’ की ‘प्रस्तावना’ से)

विनोबा की सफलता

लोगों ने मुझसे प्रश्न किया है कि “क्या 1957 में विनोबा सफल हो जायेंगे?” मैंने कहा कि मैं नहीं जानता कि विनोबा सफल होंगे या नहीं होंगे। मेरे सामने तो वह सवाल ही नहीं है। मेरे सामने तो यह सवाल है कि हम सफल होंगे या नहीं होंगे। विनोबा तो सफल होंगे ही। उनकी सफलता में कोई शंका नहीं रह गयी है। क्योंकि उनकी सफलता इस वस्तु में है कि उन्होंने हमारी बुद्धि में इस बात का एक प्रत्यय पैदा कर दिया कि सत्ता-निरपेक्ष और शस्त्र-निरपेक्ष आर्थिक क्रांति की प्रक्रिया हो सकती है। जो वस्तु दुनिया पहले मानने को ही तैयार नहीं थी, उसे उन्होंने प्रस्थापित कर दिया। अब 1957 की सफलता या असफलता तो आप लोगों के प्रत्यय पर निर्भर है। आप लोगों में जो स्फूर्तिमान्, पराक्रमी होंगे, वे सफल क्यों नहीं होंगे?

—दादा धर्माधिकारी

विपक्ष, विरोध और विसम्मति

□ गोपाल कृष्ण गांधी

लोकतंत्र से पहले भी मानव समाज कई सरकारें देख चुका था। कई सरकारें रह चुकी थीं। राजे-महाराजे रह चुके थे। अंग्रेजी हुकूमत रह चुकी थी। तब विपक्ष के लिए निर्धारित स्थान नहीं था। समाज में किसी भी चीज का जैसा भी विरोध होना चाहिए था, वो होता था। उसकी आवाज कभी सुनी जाती थी, कभी नहीं भी सुनी जाती थी। जब नहीं सुनी जाती थी तब उस विपरीत विचार के लिए उन विचारकों को अपने तरीके बनाने पड़ते थे।

भारत में आम चुनावों के दस्तावेजों को देखें, तो पता चलता है कि पहले निर्दलीय या स्वतंत्र उम्मीदवारों की काफी संख्या होती थी। उसमें से कई जीत भी जाते थे। जब से स्वतंत्र पार्टी अस्तित्व में आयी तो स्वतंत्र नाम अलग से हो गया, परंतु निर्दलीय जुड़ा रहा। बाद में निर्दलीय उम्मीदवारों के जीतने की संख्या बराबर घटती रही। अब यह बिलकुल कम हो गयी है।

पत्रकारिता में स्वतंत्र पत्रकार, निष्पक्ष पत्रकार यानी जो किसी दल या पक्ष में या फिर बिना खुशामद के लिखने वाले बहुत कम हो गये हैं। इसकी दो तीन वजहें हैं। सन् 1947 से पहले संसद न होने से विपक्ष का प्रश्न ही नहीं था। असेम्बली थी, लेकिन वो भी जनमत

से जुड़ी नहीं थी। पहली लोकसभा के बाद पक्ष-प्रतिपक्ष की बात शुरू हुई। फिर भी संविधान सभा से परम्परा बनी थी, यानी जो कांग्रेस में नहीं थे वे भी संविधान सभा में मौजूद थे। जो राजनीति से सीधे जुड़े नहीं थे वे भी इसमें मौजूद थे जैसे डॉ. राधाकृष्णन। राजेन्द्र बाबू संविधान सभा के अध्यक्ष थे और जेरोम डिसूजा व प्रो. हीरेन मुखर्जी उपसभापति थे। इसलिए तब से ही ऐसा नहीं था कि कोई विपक्ष ही दूसरा कोई मत व्यक्त करेगा। कोई पक्षधर हो ये भी आवश्यक नहीं था। निष्पक्षता के लिए स्थान था। स्वतंत्रता के लिए स्थान था। पहली व दूसरी लोकसभा में भी कुछ ऐसा ही था। सोचने वाली बात है कि हमारे वरिष्ठ नेता प्रो. हीरेन मुखर्जी, सिर्फ साम्यवादी और वामपंथी ही नहीं थे। उन्होंने एक बार पं. नेहरू के बारे में कहा था कि वे सदन के नेता ही नहीं बल्कि विपक्ष के नेता भी हैं। हमारी बात वे खुद सोचते हैं, और हमारी बात वह खुद ही कह देते हैं, क्योंकि हमारी संख्या कम है। लेकिन प्रजातंत्र और जनतंत्र में आवश्यक है कि विपक्ष हो, प्रतिपक्ष हो। स्पीकर भले ही किसी पार्टी का हो, लेकिन स्पीकर बन जाने के बाद वह किसी पक्ष का नहीं होता, न पक्ष का, न विपक्ष का। वह तो निष्पक्ष होता है।

इस व्यवस्था का बहुत पुराना इतिहास है। दूसरी राय या दूसरा मत, लोकसभा या राज्यसभा के ज्यामीतीय से या आर्किटेक्चर से जुड़ा नहीं है। वाम में विपक्ष होगा, इस तरफ प्रतिपक्ष होगा, सरकार इधर होगी ऐसी लकीरें तो बाद में बनी। लेकिन उन लकीरों से पहले एक तथ्य मौजूद था, वह यह कि सत्ता हमेशा होती है। लोकतंत्र से पहले भी मानव समाज कई सरकारें देख चुका था। कई सरकारें रह चुकी थीं। राजे-महाराजे रह चुके थे। अंग्रेजी हुकूमत रह चुकी थी। तब विपक्ष के लिए निर्धारित स्थान नहीं था। समाज में किसी भी चीज का जैसा भी विरोध होना चाहिए था, वो होता था। उसकी आवाज कभी सुनी जाती थी, कभी नहीं भी सुनी जाती थी। जब नहीं सुनी

जाती थी तब उस विपरीत विचार के लिए उन विचारकों को अपने तरीके बनाने पड़ते थे। हम सब जानते हैं जब शहीद भगत सिंह ने बटुकेश्वर दत्त के साथ सेण्ट्रल असेंबली में दो बम फेंके, तो सारे सदन में धुंआ फैला। उन्होंने कुछ अपने हाथ से लिखे हुए व कुछ छपे हुए कागजात हाल में फेंके और इंकलाब जिन्दाबाद कहकर वहीं खड़े रहे, भागे नहीं। बाद में उन्होंने कहा था कि हमने जो किया है वह जो सुन नहीं रहे थे उनके कानों को खोलने के लिए किया। तो ये, विरोध हुआ क्योंकि वहां विपक्ष नहीं के बराबर था। कांग्रेस और गांधीजी का तरीका भिन्न था। वो समाज में अपने आंदोलन खड़े कर रहे थे। दो बड़े आंदोलन तब तक हो चुके थे। सत्याग्रह का आंदोलन तब चल रहा था तथा विरोध कायम था।

उसके पहले मुगल बादशाह औरंगजेब के समय तो विपक्ष का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता था। औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दाराशिकोह को अपने से विपरीत विचारों के लिए बेरहमी से मरवाया। लेकिन उससे पहले दाराशिकोह ऐसा बहुत कुछ कह चुका था जो आज भी सुनने और सोचने लायक है। दारा के साथ ही साथ सरमद शहीद के साथ भी यही हुआ। सरमद शहीद का किस्सा बहुत ही अनूठा है। यह किसी को पता नहीं कि सरमद यहूदी थे या मुसलमान। परंतु वह स्वतंत्र थे और दारा के गुरु समान थे। वह अर्धनग्न नहीं बल्कि नग्न रहते थे। औरंगजेब से कहा गया कि इस तरह का व्यक्ति हमारे उसूलों के खिलाफ है। उसको सजा-ए-मौत दी जाए। औरंगजेब ने कहा कि इसके अलावा भी उसके खिलाफ कुछ है? जवाब आया हां, वो पूरा कलमा नहीं पढ़ता। जब हम कहते हैं कि कलमा पढ़ो, तो वह पूरा नहीं पढ़ता, आधा पढ़कर ही रुक जाता है। सरमद को औरंगजेब के सामने पेश किया गया। सरमद से कहा कलमा कहो। वह कलमा का सिर्फ पहला हिस्सा 'ला इलाही'...कहकर चुप हो गया। देयर इज नो गाड, देयर इज नो गाड एक्सेप्ट अल्लाह। लेकिन वह तो देयर इज नो गाड

यानी ईश्वर नहीं है कहकर चुप हो गया। आदेश हुआ अल्लाह के अलावा कोई और ईश्वर नहीं है। पूरा कहो। वह बोला नहीं कहूंगा। पूछा गया क्यों? उसने कहा अभी मैं नकारात्मक मनस्थिति में हूँ, इसलिए नहीं कहूंगा। जब मैं सकारात्मक मनस्थिति में आ जाऊंगा तो कहूंगा। औरंगजेब ने कहा बहुत हुआ, दस्तखत हुए और, उसे सजा-ए-मौत दे दी गयी। यह न विरोध था, न विपक्ष यह तो सरमद की विसम्मति थी। इसका परिणाम हुआ सजा-ए-मौत।

इससे भी पहले चलते हैं। मेरी समझ में कृष्ण-अर्जुन संवाद का मंच पर आधुनिक नाट्यकरण अभी नहीं हुआ है। क्योंकि कृष्ण तो कृष्ण हैं, भगवान हैं तो जीत तो उन्हीं की होनी है। लेकिन अर्जुन जब कृष्ण से प्रश्न पूछते हैं, छोड़िए मैं लड़ना नहीं चाहता। मुझे इन सबको मारने में दिलचस्पी नहीं है। प्रश्न के जवाब में अर्जुन को क्या सुनने को मिला? अरे, तुम इतने कायर, अरे अनार्य हो। कृष्ण अर्जुन को अनार्य कह रहे हैं। अर्जुन भगवान कृष्ण से सुन रहे हैं कि तुम अनार्य हो। विसम्मति का क्या परिणाम है कि उनको यह भी सुनना पड़ रहा है कि तुम आदमी भी हो कि नहीं। गांडीव जमीन पर गिर जाता है। यानी विसम्मति का इतिहास बहुत पुराना है। परंतु विसम्मति आवश्यक है। अगर अर्जुन ने सवाल नहीं पूछा होता तो गीता का उपदेश हमें कैसे मिलता? अगर अर्जुन शुरू से ही हां में हां मिलता तो उपदेश की क्या जरूरत होती? सरमद और दाराशिकोह अगर विसम्मत न होते तो क्या उनकी कुर्बानी का उदाहरण हमें मिलता? शहीद भगत सिंह ने जो किया अगर वह न किया होता, जब विपक्ष नहीं था तब क्या देश की आवाज को सुना जा सकता था? गांधी ने जो भी किया वह विसम्मति से शुरू किया। काठियावाड़ से शुरू किया। विसम्मति जो होती है वह अपनों से होती है। शहीद भगत सिंह सेण्ट्रल असेंबली में बनिस्बत अंग्रेजों के वहां उपस्थित हिन्दुस्तानियों से ज्यादा कह रहे थे। □

पर्यावरण

वन अधिकार कानून का मखौल

□ कुलभूषण उपमन्यु

कब्जा हटाने का यह आदेश किसानों के ही विरुद्ध लिया गया एकतरफा फैसला है। जबकि जलविद्युत परियोजनाओं, निजी उद्योगों ने कई जगह कई बीघा वन भूमि पर नाजायज कब्जा कर रखा है। उस पर न्यायालय व सरकार द्वारा आज तक कोई भी दंडात्मक कार्यवाही नहीं की गयी। इसी तरह के हजारों नाजायज कब्जे सरकारी उद्योगों तथा सरकारी प्रतिष्ठानों ने भी कर रखे हैं।

पिछले दिनों में हिमाचल प्रदेश के वन विभाग ने ऊपरी शिमला के रोहडू व अन्य स्थानों में वन भूमि पर लगे सेब के बगीचों, जिसमें सेब की फसल तैयार थी, को निर्ममता से काट डाला। अप्रैल माह में गोहर में भी एक ऐसे बगीचे को काटा गया था, जिसमें फूल लग रहे थे। कांगडा तथा प्रदेश के अन्य हिस्सों में घरों से बिजली व पानी के कनेक्शन काटे गये तथा कुछ घरों को तोड़ दिया गया। यह घृणित कार्य सरकार के ही एक विभाग ने हिमाचल उच्च न्यायालय के 6 अप्रैल 2015 व इससे पहले के आदेशों की आड़ में किया। इसमें सरकार द्वारा छोटे व गरीब किसानों पर ही गाज गिरायी गयी, जबकि बड़े किसानों तथा प्रभावशाली लोगों पर यह कार्यवाही नहीं की गयी। यह मामला उच्च न्यायालय में वर्ष 2008 से चल रहा है जिस पर इससे पहले भी न्यायालय ने कई आदेश

जारी किये थे। दूसरी ओर प्रदेश सरकार ने आज तक इस पर वन अधिकार कानून की बाध्यता संबंधी पक्ष न्यायालय में नहीं रखा। ऐसे में केवल आदेश के आधार पर वन विभाग की सक्रियता पर शंका पैदा होती है और सरकार की वन अधिकार कानून को न लागू करने की नियत को भी दर्शाता है।

सरकार के संज्ञान में यह बात आनी चाहिए थी कि उच्च न्यायालय का यह फैसला कानूनसंगत नहीं है क्योंकि वनाधिकार कानून 2006 इसके आड़े आता है। उक्त कानून के प्रावधानों के मुताबिक जब तक वन अधिकारी की मान्यता की प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती तब तक आदिवासी व अन्य परम्परागत वन निवासी को किसी भी तरह से उनके परम्परागत वन संसाधनों से बेदखल नहीं किया जा सकता। नियमगिरी के फैसले में उच्चतम न्यायालय ने भी यह प्रस्थापना दी है। सरकार को उच्च न्यायालय में इस पर दखल व पुनरावलोकन याचिका दायर करनी चाहिए थी। गौरतलब है कि वन अधिकार कानून के तहत मुख्य सचिव की अध्यक्षता वाली राज्यस्तरीय निगरानी समिति ने अगस्त 2014 में प्रस्ताव पारित करके सरकार की ओर से ऐसी कोई भी पहल नहीं हुई। जिसका कब्जा हटाया गया है ऐसा कब्जाधारी वन अधिकारी समिति व ग्रामसभा में अपने दखल को सही व 13 दिसंबर 2005 से पहले का साबित करवा लेता है तो ऐसी स्थिति में कब्जा हटाने, घर तोड़ने व सेब के हरे पेड़ काटने वाले पुलिस व वन विभाग के कर्मचारियों के खिलाफ उच्चतम न्यायालय के हरे पेड़ काटने पर प्रतिबंध निर्देशों, अधिकार व कानून के प्रावधानों तथा वन संरक्षण अधिनियम 1980 के तहत कानूनी कार्यवाही भी हो सकती है।

यह मामला पिछली सरकार के वक्त से चल रहा है। ज्यादातर कब्जे 2002 के हैं। उस समय की सरकार ने नाजायज कब्जे बहाल करने के आदेश दिये थे। दूसरी बार भी सत्ता में आने के बावजूद वह अपने इस

फैसले को लागू नहीं करा सकी। वन अधिकार कानून को लागू करने पर पिछली सरकार ने भी कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। वर्तमान प्रदेश सरकार तो आज भी वनाधिकार कानून 2006 के अनुसार सोचने को तैयार नहीं है। इसलिए सरकार का यह कहना अनुचित है कि हम छोटे किसानों के कब्जे बचाना चाहते हैं और उन्हें नौतोड़ देंगे। उनसे पूछना चाहिए कि किस कानून के तहत कब्जों को बहाल किया जा सकता है व नौतोड़ दी जा सकती है? आज ऐसा कोई भी कानूनी प्रावधान नहीं है। केवल वन अधिकार कानून तथा भारत सरकार की वर्ष 1990 की अधिसूचना के तहत ही कब्जों का नियमितीकरण हो सकता है। यह भी तथ्य है कि जब से वन संरक्षण अधिनियम 1980 लागू हुआ है तभी से प्रदेश में नौतोड़ बांटना बंद हुआ है जो आज भी लागू है। इसलिए सरकारी बयान असत्य व तथ्यों से परे हैं। वन भूमि खेती के लिए ऐसे में लीज पर भी नहीं दी जा सकती। इस हेतु वन संरक्षण अधिनियम 1980 में संशोधन होना चाहिए परंतु यह संसद में ही पारित हो सकता है, जो आज सम्भव नहीं है। ऐसे में एक ही रास्ता है कि सरकार वन अधिकार कानून 2006 को ईमानदारी से लागू करे और 13 दिसंबर 2005 तक के उचित कब्जों व वन भूमि पर आजीविका के लिए वन निवासियों द्वारा किया दखल का अधिकार का पत्र किसानों को दिलवाया जाए।

वन अधिकार कानून के तहत प्रदेश के किसान, जो आदिवासी हों या गैर आदिवासी, के 13 दिसंबर, 2005 से पहले कब्जे नहीं हटाये जा सकते बल्कि उन्हें इसको अधिकार पत्र का पट्टा मिलेगा बशर्ते वह इस पर खुद काश्त करते हों या उनका रिहायशी मकान हों। प्रदेश के सभी गैरआदिवासी किसान भी इस कानून के तहत अन्य परम्परागत वन निवासी की परिभाषा में आते हैं क्योंकि वे यहां तीन पुश्तों से रह रहे हैं और आजीविका की

जरूरतों के लिए वन भूमि पर निर्भर हैं। इसलिए पूरे प्रदेश के तकरीबन सभी किसानों पर यह कानून प्रभावी है। ऐसे में वन भूमि पर दखल को नाजायज कब्जा नहीं कहा जा सकता। यह आजीविका की मूल जरूरतों के लिए किया गया दखल है जिस पर ग्रामसभा निर्णय लेने का अधिकार रखती है। ग्रामसभा ही इसे नाजायज कब्जा या निजी वन संसाधन के अधिकार के रूप में मान्यता दे सकती है।

कब्जा हटाने का यह आदेश किसानों के ही विरुद्ध लिया गया एकतरफा फैसला है। जबकि जलविद्युत परियोजनाओं, निजी उद्योगों ने कई जगह कई बीघा वन भूमि पर नाजायज कब्जा कर रखा है। उस पर न्यायालय व सरकार द्वारा आज तक कोई भी दंडात्मक कार्यवाही नहीं की गयी। इसी तरह के हजारों नाजायज कब्जे सरकारी उद्योगों तथा सरकारी प्रतिष्ठानों ने भी कर रखे हैं। हिमाचल सरकार ने उच्च न्यायालय में उसके आदेश में आंशिक संशोधन के लिए 25 जुलाई, 2015 को आग्रह पत्र दायर किया है और न्यायालय से आग्रह किया कि नाजायज कब्जे से छीनी गयी भूमि के पेड़ों को वन विभाग को सौंपा जाये। यह आग्रह ही अपने आप में गैरकानूनी व असंवैधानिक है। क्योंकि वन निवासी का वन भूमि पर दखल अगर 13 दिसंबर, 2005 से पहले का है तो उस भूमि पर उसी किसान का कानूनी अधिकार बनता है। उच्च न्यायालय का इस पर दिया गया 27 जुलाई का फैसला भी अनुचित है और इसे कानून सम्मत नहीं माना जा सकता।

सरकार को चाहिए कि हिमाचल उच्च न्यायालय के इस आदेश के स्थगन हेतु उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर करे। वन अधिकार कानून को पूरे प्रदेश में अक्षरशः लागू करे व वन अधिकार के लंबित पड़े सभी दावों का तुरंत निपटारा किया जाए। इस पर भारत सरकार ने प्रदेश सरकार को 10 जून 2015 को आदेश जारी किया है और कहा है कि छः माह के अंदर इस कानून

को लागू करने की सभी प्रक्रियाएं पूरी की जाएं। 13 दिसंबर, 2005 से पहले के सभी कब्जे/दखल जो खेती व आवासीय घर के लिए दिये गये हैं, के अधिकार पत्र के पट्टे प्रदेश के किसानों को सौंपे जाने चाहिए। जिन किसानों के विरुद्ध वन व राजस्व विभाग द्वारा नाजायज कब्जे की प्राथमिकी दर्ज की हैं वे सभी गैरकानूनी हैं उन्हें तुरंत वापस किया जाना चाहिए। वन अधिकार कानून संसद में पारित एक विशेष अधिनियम है, जिसके तहत जब तक वन अधिकारों की मान्यता की प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती तब तक इस तरह की बेदखली की कार्यवाही गैरकानूनी है। □

शोकान्तिका

जंगलों की सफाई, पेड़ों की कटाई आदि वर्षों से गैर-जिम्मेदारीपूर्वक चल रही है, परिणामतः वन-महोत्सव या वृक्षारोपण आदि राष्ट्रीय स्तर पर मनाना पड़ता है। मेक्सिको में 'वर्ल्ड फारेस्ट्री कांग्रेस' का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में सभी देशों के प्रतिनिधियों ने गैर-कानूनी, चोरी-छिपे होने वाली जंगल-कटाई पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने यह विचार भी रखा कि इसे रोकने के लिए यदि तुरन्त ठोस कदम न उठाये गये तो मानव-जाति की अपूरणीय क्षति होगी। प्रदूषण की समस्या और भयंकर हो जायेगी। बढ़ते हुए सीमेंट-कंक्रीट के जंगल और बढ़ते हुए कारखानों की संख्या इस प्रश्न को और खतरनाक कर देंगी। वर्षा का प्रमाण क्रमशः कम होता ही जा रहा है। अतः जीने की आवश्यक तीनों वस्तुएं—शुद्ध हवा, पानी तथा अन्न—आवश्यकता के अनुरूप प्राप्ति में कठिनाई हो रही है। हम लोग इसका अनुभव भी करते हैं।

जिनपर वनों की व्यवस्था या प्रबंधन की जिम्मेदारी है, उन्हें उस कार्य के प्रति उत्तनी रुचि नहीं है। यही शोकान्तिका है।

(गांधी-विचार और पर्यावरण)

क्या प्राचीन ग्रीक- लैटिन की भांति संस्कृत भी मृत भाषा बनेगी?

□ बंदी नारायण तिवारी

इस देववाणी 'संस्कृत' को मृतभाषा बनने से बचाने हेतु 'इजरायल' जैसे संघर्षशील लघु देश से प्रेरणा लेना चाहिए, जिसने सन् 1948 में स्वाधीन होकर अपनी विलुप्त हो रही भाषा 'हिब्रू' का अपने देश में ही चतुर्मुखी विकास करके जीवंतता प्रदान की और संयुक्त राष्ट्र संघ में भी मान्यता दिलायी।

संस्कृत के विषय में योरोपीय विद्वान फादर डॉ. कामिल बुल्के ने कितना स्पष्ट कहा—'संस्कृत मां, हिन्दी गृहिणी और अंग्रेजी नौकरानी है।' जन सामान्य में प्राचीन दो घटनाएं प्रायः सर्वविदित हैं कि युद्ध क्षेत्र में राजा दशरथ की पत्नी कैकई ने फंसे रथ के पहिये को निकाला तथा अद्वैत दर्शन के प्रवर्तक जगद्गुरु शंकराचार्य एवं विद्वत्प्रवर आचार्य मंडन मिश्र के चर्चित शास्त्रार्थ की निर्णायिका आचार्य मंडन मिश्र की परम विदुषी पत्नी 'भारती' थी।

वर्तमान काल 'ग्लोबलाइजेशन' या भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के दौर से गुजर रहा है। कोई भी देश किसी देश के सहयोग या पात्रता का मोहताज नहीं है। भूमंडलीकरण

किसी का कोई विशेषाधिकार भी नहीं है। यह साधन है विश्व लोककल्याण एवं संपूर्ण भूमंडल के विकास का। इसी भावना की मूल धारा को हजारों वर्ष पूर्व संस्कृत की इस चर्चित पंक्ति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ने समस्त संसार को परिवार की मान्यता प्रदान की थी। विश्व परिवार की परिकल्पना का संदेश उन शोधार्थी ऋषि-मुनियों ने सर्वप्रथम श्रुति पश्चात् लेखनी के माध्यम से—'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयः। सर्वेभद्राणि पश्यन्तु, माँ कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥'—का उद्घोष किसी धर्म, देश या जाति विशेष का न होकर समस्त मानवता हेतु किया है। आज पर्यावरण का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। जबकि प्रारम्भिक संस्कृत के शांति पाठ में 'वनस्पति' को मान्यता प्रदान की गयी है। उसी गुण के आधार पर तुलसी, पीपल जो चौबीसों घंटे प्राणवायु प्रदाता है, बेल, नीम, बरगद आदि के विनाश करने पर 'ब्रह्महत्या' समान दोषी माना जाता है। प्रकृति के छेड़छाड़ से आज पर्यावरण का संतुलन बिगड़ गया है।

संस्कृत की ऋचाएं विश्व शांति, विश्वकल्याण भाषा और विश्व बंधुत्व की भावना से अनुप्रेरित हैं। इसीलिए हम किसी जाति धर्म विशेष से संबंध न करते हुए हिन्दी सहित अनेक भाषाओं की जननी 'संस्कृत' भाषा को मृत भाषा होने से बचायें। हजारों वर्षों से होने वाले चारों महाकुम्भ पर्वों पर लाखों लोग एकत्रित होकर किस भाषा में सम्पर्क रखते थे। संस्कृत से ही। इस देववाणी 'संस्कृत' को मृतभाषा बनने से बचाने हेतु 'इजरायल' जैसे संघर्षशील लघु देश से प्रेरणा लेनी चाहिए, जिसने सन् 1948 में स्वाधीन होकर अपनी विलुप्त हो रही भाषा 'हिब्रू' का अपने देश में ही चतुर्मुखी विकास करके जीवंतता प्रदान की और संयुक्त राष्ट्र संघ में भी मान्यता दिलायी। इसकी पृष्ठभूमि में स्वभाषा के प्रति कूट-कूट कर भरा स्वाभिमान था। काश! हम भी ऐसा ही संकल्प लें 'संस्कृत मतं, जयति संस्कृतिः'। संस्कृतज्ञ प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने कितने सुंदर शब्दों

में जन-जन की भाषा हिन्दी की जन्मदात्री जननी संस्कृत को काव्य में पिरोया है—

“जिसे स्वयम्भू संस्कृत ने

तन-मन-धन देकर प्यार किया।

पाली प्राकृत ने गोदी में

लेकर जिसे दुलार किया।”

ऋग्वेद के हिन्दी पद्यानुवाद में कविवर बशीर अहमद मयूख ने संस्कृत की मूल आध्यात्मिक भावना को अपनी रेखांकित पंक्तियों में कितने सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है—'आदमी ब्रह्म का अंश है, आदमी देव का वंश है। ये विशेषण हमारे लिए आत्मभोगी अहमद हो गये।'

गीता, रामायण और महाभारत जैसे महान ग्रंथों ने भी भारत की संस्कृति और संस्कृत को जीवंतता प्रदान की है। कवयित्री माधवी लता शुक्ला ने गीता की पंक्ति 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' की सरल व्याख्या इन पंक्तियों में व्यक्त की हैं—

'कर्महिं केवल तव अधिकारू,

तोरे बसनहिं फलहिंस विचारू।

तेहि ते तजिय कर्मफल चाहा,

तजेहु अकर्म मोह नरनाहा।।

लोक गीतों के इतिहास पुरुष रामनरेश त्रिपाठी की निम्न पंक्तियां चेतना के स्वरो में कह रही हैं—'पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला-पोसा। किए हुए हैं वह निज-हित का तुमसे बड़ा भरोसा।।'

इसके विपरीत मैकाले ने कहा था कि हम तो भारत से चले जायेंगे, किन्तु अंग्रेजियत को छोड़ जायेंगे। सम्भवतः इसलिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने वर्तमान दशा पर अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा—

इंग्लिश को भारत की भाषा अवश्य बना लेते हैं आप।

तो उस गोरी सत्ता ने ही किया कौन सा ऐसा पाप।

मना लीजिए क्यों न उसे भी, और कीजिए मृदुलालाप।

गांधी फिर थोड़े आवेंगे, सो भी देने को अभिशाप।

अंग्रेजी न चलती एक पल, यदि वह बूढ़ा होता आज।

आज जब नारी वर्ग समान अधिकार की मांग कर रहा है। वैदिक संस्कृति के सामाजिक पक्ष में ऋग्वेदकालीन विवाह आदि संस्कारों

का वर्णन मिलता है, एक पत्नी प्रथा प्रचलित थी। आज एड्स जैसे भयानक रोग में इसके समाधान हेतु एक पत्नी का प्रचार किया जा रहा है। पुरुषों के समान ही स्त्रियों को भी उच्च शिक्षण की व्यवस्था थी, स्त्रियां अपनी रुचि के अनुसार वर का चयन करती थीं। वह पुरुष की सहयोगी और सहायक थीं। 'जायेदस्तम' कहकर नारी को ही घर कहा गया—इसलिए लोक रीति में लोग उसे गृहस्वामिनी कहते हैं। मंत्र में 'समन' शब्द का प्रयोग है, जिसके दो अर्थ हैं—समारोह और युद्ध। अथर्ववेद में स्पष्ट वर्णन है कि सामूहिक यज्ञों और युद्धों में नारियां जाती थीं। ऋग्वेद में इन्द्राणी, शची, अपाला, घोषा, काक्षीक्ती, लोपामुद्रा, उर्वशी अदिति आदि अनेक ऋषिकाएं हैं। संस्कृत मात्र पंडितों, पुरोहितों के कर्मकांड की भाषा न होकर ज्ञान-विज्ञान की भाषा है, वर्तमान कम्प्यूटर युग ने भी इस भाषा की वैज्ञानिकता को मान्यता दी है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के संस्कृत विद्वानों में पद्मभूषण डॉ. विद्यानिवास मिश्र के अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत की विभिन्न विषयों में उद्बोधन होते रहे हैं। संस्कृत की स्तरीय पत्रिका 'विश्ववाणी' के संरक्षण काशी नरेश महाराज विभूति नारायण सिंह तथा उसका संपादन मुम्बई के संस्कृतज्ञ पं. गुलाम दस्तगीरजी करते थे। वह नित्य बोलचाल तथा पत्राचार भी संस्कृत में ही करते थे। नई पीढ़ी प्रत्येक पुरानी बात का मखौल उड़ाती है, इसी को डॉ. गिरिजाशंकर त्रिवेदी महाकवि कालिदास की पंक्तियों में रेखांकित करते हैं। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्:' इसको कवि बलवीर सिंह रंग जी नये ढंग से कहते हैं—

'पुराना सब कुछ बुरा नहीं।

नया भी सब कुछ नहीं महान।

प्रगति के संग सँवरते हैं।

चिरंतन जीवन के प्रतिमान।'

संसार में तीन प्राचीन भाषाओं का प्रायः उल्लेख किया जाता है—ग्रीक, लैटिन एवं संस्कृत। इसमें से दो भाषाएं ग्रीक तथा लैटिन

लुप्तप्राय होकर इतिहास के पन्नों में आ चुकी हैं। सैकड़ों भाषाओं की जननी देववाणी संस्कृत है। वस्तुतः अंग्रेजों के दासता काल में प्राचीनकाल से हमारे देश की सार्वभौमिक मान्यता रही है—'भारत की प्रतिष्ठा एवं गौरव दो विभूतियों—संस्कृत भाषा तथा भारतीय संस्कृति से है। दोनों ही महान भारत की अमूल्य निधियां हैं, जिनकी यशोगाथा सारे संसार में रही है।' इसी संदर्भ में पद्मश्री शांतिलाल जैन ने मुझसे कहा था कि मुझे वह दिन स्मरण है जब आठ आने की कृति बेची थी। आज उस कृति को 14-14 खंडों में विदेशी विद्वानों की टीकाएं प्रकाशित करके संसार में अपने सभी विक्रय केन्द्रों में बेच रहा हूं। जैनजी के कथन का स्पष्ट आशय यह था कि विश्व में संस्कृत भाषा के जिज्ञासु बढ़ रहे हैं। जबकि अपने देश में दिनोंदिन संस्कृत प्रेमियों की संख्या कम हो रही है।

वस्तुतः संस्कृत वाङ्मय ज्ञान-विज्ञान एवं अध्यात्मिकता का अक्षुण्ण स्रोत है। प्रयाग में अशोक स्तम्भ तथा दिल्ली के लौह स्तम्भ पर समुद्र गुप्त की प्रशस्तियों तथा अन्यत्र बहुत से संस्कृत को कम से कम समाज के शिक्षित एवं भद्र लोगों के साथ ही राजा और उनके प्रतिनिधियों की भाषा तो प्रमाणित करते ही रहे हैं। गुप्तकाल के पूर्व की मुद्राएं यद्यपि प्राकृत व संस्कृत मिश्रित रही हैं, तत्पश्चात् कुछ को छोड़कर शेष में संस्कृत अंकित है। वास्तव में ये समस्त लेख शिक्षित वर्ग यानी संस्कृत भाषा-भाषियों हेतु लिखे गये थे। चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ चरक-संहिता, कामसूत्र के व्याख्याता वात्स्यायन, अनीश्वरवाद को पराकाष्ठा पर पहुंचाने वाले चार्वाक यद्यपि समाज ने इनके सिद्धांत को मान्यता नहीं प्रदान की, ईश्वर या स्वर्ग-नरक को पूर्ण रूप से नकारा है। 'ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत्' यानी मौज-मस्ती के लिए कर्ज लेकर खूब व्यंजन खाओ-पियो? महान चाणक्य के ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में राजनीति के भी सूत्र वाक्य 'शत्रु का शत्रु मित्र' संस्कृत में मील के पत्थर बने। इनके अलावा राजनीति तथा

शासकीय सामाजिक व्यवस्था में भर्तृहरि नीति, शुक्र नीति, विदुर नीति, रावण संहिता आदि अनेक ग्रंथों का सृजन संस्कृत भाषा में हुआ। वेदों के सार रूप से 'उपनिषद्' की संस्कृत से फारसी में टीका करने वाले औरंगजेब के भ्राता दाराशिकोह ने वाराणसी जाकर पं. कमलापति त्रिपाठी के परदादा से संस्कृत का गहन अध्ययन किया था। दाराशिकोह 'उपनिषदों' व फारसी से 'सिरे अकबर' यानी गूढ़ रहस्य का अनुवाद टीका सहित किया। इससे उनके भ्राता औरंगजेब ने उनका वध करा दिया था, क्योंकि वे संस्कृत से प्रभावित हो चुके थे।

चीनी यात्री 'ह्वेन सांग' ने सातवीं शताब्दी में भारत भ्रमण किया। देश के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली संस्कृत भाषा हेतु लिखा—मध्य प्रदेश के लोग स्पष्ट तथा शुद्ध बोलने के लिए प्रख्यात हैं। उनकी अभिव्यक्ति देवों की भांति लययुक्त और शानदार है और उनके स्वरोच्चारण स्पष्ट और पृथक हैं... 'ह्वेन सांग' ने देशाटन करते हुए बाणभट्ट एवं हर्षवर्धन की ऐतिहासिक नगरी कन्नौज पहुंचने पर गंगा तट स्थिति गौरीशंकर मंदिर में एक हजार अर्चकों द्वारा उसमें होने वाले पूजा-अर्चना देख, उसकी चर्चा की है। आज जहां संस्कृत पुजारियों का मंदिरों-मठों में अकाल पड़ा है, उस समय एक देवालय में एक हजार पुजारियों की चर्चा उन्होंने अपनी डायरी में की है।

जर्मन विद्वान 'मैक्समूलर' ने गहन अध्ययन करके संस्कृत को श्रेष्ठ भाषा के बहुआयामी रूप से दिग्दर्शन कराया। जर्मन सरकार ने उनकी स्मृति में 'मैक्समूलर' भवन की स्थापना की। एक समय था जब रामायण के 'पुष्पक विमान' तथा महाभारत के अनेक अस्त्र-शस्त्रों के वर्णन की हँसी उड़ाई जाती थी। सूर्यलोक-चन्द्रलोक आदि की वराहमिहिर आदि ज्योतिर्विदों के ग्रंथों में वृहद् व्याख्याएं हैं। आज ग्रहों पर विभिन्न देशों के जाने की होड़-सी लगी है। संस्कृत साहित्य की प्रचुर काव्य कृतियों में कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' तथा अब्दुल रहीम खानखाना→

आत्म-विश्लेषण के लिए

□ शुभू पटवा

‘मेरी सबके साथ मित्रता है, किसी से वैर-शत्रुता नहीं, मैंने सब प्राणियों को क्षमा किया है, मुझे भी सब क्षमा दान दें। मेरी वाणी का उपयोग इस जगत के मंगल के लिए हो, सारे द्वेष भस्मीभूत हो जाएं, हमारे व्यवहार का यही सहयोग हो।’

क्षमा करने वाला नहीं, मांगने वाला बड़ा होता है। जब तक अहंकार का विलोपन न हो जाए, तब तक क्षमा मांगना दुस्तर है। मन की निर्मलता और सरलता ही वे मुख्य कारक हैं जो अहंकार से मुक्ति में सहायक हो सकते हैं। क्षमा करना भी किन्हीं अंशों तक अहंकार-मुक्त होना ही है।

जैन समाज में आठ दिन के पर्युषण अथवा दसलक्षण पर्व के बाद जो क्षमा-याचना एक-दूसरे से की जाती है, एक अनूठा अनुष्ठान हो सकता है—यह, यदि इसमें अहंकार-मुक्त होकर क्षमा ली दी जाए।

मैत्री और करुणा के बिना अहंकार से कोई मुक्त नहीं हो सकता, लेकिन जिस तीव्रता से वक्त करवट ले रहा है उसके चलते मैत्री, करुणा या मन की निर्मलता-सरलता सिद्धांत के स्तर पर भले बचे रहें, व्यवहार के स्तर पर इनका वजूद रिवाजी ही रहता प्रतीत होता है।

→ का ‘गंगाष्टकम्’ अति प्रसिद्ध हुआ। मेरी दृष्टि में हिन्दी के अलावा संस्कृत पर पाश्चात्य विधि से शोध का सर्वप्रथम श्रीगणेश करने का श्रेय इटली के फ्लोरेंस विश्वविद्यालय में सन् 1911 में इटली के युवा लुइजि पियो तेसीतरी को है।

हमारे धर्मशास्त्रों में मैत्री और करुणा, राग-द्वेष और वैर-शत्रुता के लिए अनेकशः सूक्त मौजूद हैं, लेकिन ये सूक्त प्रेरणा-पुंज बनकर हमारे जीवन को आलोकित नहीं कर पा रहे। क्यों?

दो प्रमुख कारण समझे जा सकते हैं— गलती को छिपाना और दूसरों में सदा दोष देखना। वर्जना भी एक पहलू हो सकता है। बचपन में अक्सर वर्जनाओं का जाल ही बच्चों के चारों ओर बिछा होता है। बचपन में भोगी वर्जनाएं ही वे बाधक तत्त्व हैं जो सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास में अवरोधक बने रहते हैं। बचपन की वर्जनाओं से कोमल बाल-मन में पैठी-पनपी कुंठाएं बुढ़ऊ होने तक भी पीछा नहीं छोड़तीं। ये ही वे स्थितियां हैं जो मैत्री और करुणा के वातायन को खुलने ही नहीं देतीं।

इसलिए जरूरी है कि गलतियों को छिपाने की बनिस्बत उनका स्वीकार हो। गलती हिकारत में न बदले, अपितु स्वीकार का संस्पर्श पाकर वह परिमार्जित हो जाए। ऐसा होते ही दूसरों में दोष देखने की प्रवृत्ति स्वतः ही निर्मल होती चली जायेगी।

मैत्री और करुणा की भिती को सुदृढ़ करने का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है—वर्जना-मुक्त बचपन। बड़ों की मानसिकता में बदलाव आने से यह संभव हो सकता है और धर्म इस बदलाव का प्रभावी जरिया बन सकता है।

जब धर्मशास्त्रों में यह कहा गया है—
‘मेरी सबके साथ मित्रता है, किसी से वैर-शत्रुता नहीं, मैंने सब प्राणियों को क्षमा किया है, मुझे भी सब क्षमा दान दें। मेरी वाणी का उपयोग इस जगत के मंगल के लिए हो, सारे द्वेष भस्मीभूत हो जाएं, हमारे व्यवहार का यही सहयोग हो।’

तब यह धर्म-जगत का ही तो दायित्व बनता है कि ऐसा वातावरण भी निर्मित किया

आज बाल साहित्य के प्रचार-प्रसार की अत्यधिक चर्चा हो रही है। बच्चों को मनोवैज्ञानिक ढंग से कहानियों के माध्यम से विष्णुशर्मा द्वारा दी गयी शिक्षा ‘पंचतंत्र’ और ‘हितोपदेश’ है। वस्तुतः कहानियों द्वारा हितोपदेश के रूप में मातृभाषा रूप से

जाए, जिसमें उपरोक्त स्थितियां बन सकें। ऐसी स्थितियों का निर्माण करने में वर्जना-मुक्त बचपन सबसे अधिक सहायक हो सकता है और धर्म-जगत इसके लिए प्रेरक-उद्बोधक बनकर अपना दायित्व निभा सकता है। अतः पर्युषण और क्षमायाचना के इस पर्व पर इस दिशा में संकल्पपूर्वक कदम उठाए जाने की जरूरत है। धर्म-जगत इसके लिए समर्थ भी है और सक्षम भी।

सभी जानते हैं कि मैत्री और करुणा का पाठ बचपन में ही सीखा जा सकता है। बचपन में सीखा हुआ यह पाठ चिर-जीवन स्थिर भी रह सकता है। अतः मैत्री और करुणा का पहला पायदान बचपन ही है और धर्म-जगत के लिए यह चुनौती है कि वह सुखद भविष्य की खातिर उजड़ रहे बचपन को संजोए। इस बार क्षमता-याचना पर्व पर यदि ऐसा संकल्प सामने आता है तो यह एक ठोस कदम होगा।

अक्सर यह गलतफहमी हो जाती है कि मैत्री, करुणा और प्रेम की बात करने वाले लोग कायर होते हैं। यह एक मिथ्या धारणा ही है। पर, यह भी साफ होना जरूरी है कि शौर्य, साहस और क्रूरता में अंतर है। क्रूर व्यक्ति कभी करुणामय, प्रेममय नहीं हो सकता। इसके बरअक्स शौर्यवान में करुणा और प्रेम की सरिता संचरित हो सकती है। दरअसल करुणा और प्रेम तो शौर्य के अंगवस्त्र की तरह ही हैं।

कोई व्यक्ति शौर्यवान तभी कहलाता है, जब उसका पराक्रम श्रेयस् में नियोजित हो। निहित स्वार्थों की संपूर्ति के लिए पराक्रम का उपयोग नहीं होता। वैसा पराक्रम क्रूरता में तबदील हो जाता है और समाज में वह निन्दित भी होता है। ऐसी स्थितियों से व्यक्ति और समाज को मुक्त कराने में धर्म और

हितोपदेश पढ़ी जाती थी। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इस बात से होता है कि देश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त तुर्क, लैटिन, इटालियन, हिब्रू, ग्रीक, सीरियाई, स्पेनिश, फ्रांसीसी, अरबी, रूसी, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुए। □

अध्यात्म की महती भूमिका हो सकती है। प्रश्न है—उसका निर्वहन किस विधि से हो और उसका असर कितने स्तर तक और कितनी अवधि तक रहे!

अन्य सभी विधाओं की तुलना में धर्म का प्रभाव आज भी समाज में सर्वाधिक है। राजनीति और सत्ता का प्रभाव तो इसलिए प्रतीत होता है कि उसके पास विधि और कानून के अधिकार होते हैं। व्यवस्था-संचालन में सत्ता और शासन को अपरिमित अधिकार मिले होते हैं—भले लोकतांत्रिक शासन प्रणाली ही क्यों न हो। सत्ता और शासन के प्रभाव को एक बार अलग रख दिया जाए तो धर्म ही एक ऐसी विधा है जो समाज को सबसे अधिक प्रभावित कर रही है। ऐसी स्थिति में समाज को दिशा देने में भी धर्म ही सर्वाधिक असरदार साबित हो सकता है। देखना सिर्फ यह है कि धर्म और ढोंग में अंतर किया जाए और वह अपनी भूमिका वास्तविक रूप से निर्भय और निर्लोभ रहते हुए पूरी करे।

पर्युषण और क्षमापना का पर्व आत्म-विश्लेषण का अवसर प्रदान करता है। आत्म-विश्लेषण केवल व्यक्ति करे और धर्म-संस्थाएं न करें—यह भला कैसे हो सकता है? अतः बुनियादी तौर पर धर्म-संस्थाओं के लिए यह अधिक प्रासंगिक है कि वे भी अपना आत्म-विश्लेषण करें। आज जो स्थितियां हमारे सामने मौजूद हैं और जिस तरह का जातीय-सांप्रदायिक उन्माद देश में बढ़ रहा है, उसके चलते ऐसा करना समय की अनिवार्यता भी है।

अकेला व्यक्ति मूलतः करुणा और प्रेम की ही बात करता है, लेकिन ज्यों ही व्यक्तियों का समूह बनता है और निहित स्वार्थों की टकराहट पैदा होती है तो वहां क्रूरता पनपनी शुरू हो जाती है। अपने संतोष के लिए हम ऐसे समूहों को 'गिरोह' की संज्ञा दे सकते हैं और समाज में व्याप्त अशांति और अराजकता के कारक बन जाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि धर्म-संस्थाएं भी अपना आत्म-विश्लेषण करें।

मैत्री, करुणा, प्रेम और सहजता के अनहद संसार का निर्माण हो—यही तो अभीप्सा है हर किसी की। □

मत-सम्मत

विसंगतियां इतिहास लेखन की

□ किशनगिरि गोस्वामी

यदि इस संसार की गाथा लड़ाई से शुरू होती, तो आज एक भी आदमी जीवित नहीं बचता। इस धरती पर सैकड़ों कौमों हजारों वर्षों से मिल-जुलकर रह रही है। इतिहास उनका उल्लेख कभी नहीं करता, कर भी नहीं सकता।

राजा-महाराजा किस प्रकार भोग-विलास करते थे? किस प्रकार हत्याएं करते थे? किस प्रकार शत्रुता करते थे? यह सब 'हिस्ट्री' में मिल जाता है। यदि मात्र यही इतिहास होता, तो दुनिया कब की डूब गयी होती। यदि इस संसार की गाथा लड़ाई से शुरू हुई होती, तो आज एक भी आदमी जीवित नहीं बचता। इस धरती पर सैकड़ों कौमों, हजारों वर्षों से मिल-जुलकर कर रही हैं।

आजकल विद्यालयों में जो तालीम दी जा रही है, उसमें यूं तो अनेकानेक दोष हैं, लेकिन एक बड़ा भारी दोष यह है कि इससे भावी पीढ़ी के दिमाग में 'इतिहास' के नाम पर कई चीजें टूँसी जा रही हैं। अतः इस तालीम में सर्वाधिक गंभीर खतरा इस इतिहास-शिक्षण ने खड़ा किया है। इतिहास यानी इति-ह-आस। परंतु आज तो इतिहास में जो नहीं हुआ, उसे भी लिख दिया जाता है। इतिहास लेखन तथ्यों से वास्ता रखता है। अपने वर्णानात्मक रूप में भी वह इस कसौटी की अवहेलना नहीं कर सकता। लेकिन जहां इतिहास लेखन को अपने पूर्वाग्रहों को पोसने-परोसने और प्रचार का हथियार बना दिया जाए, वहां तथ्यों की बलि चढ़ाने तथा मनचाहे

निष्कर्ष निकालने-थोपने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगती है। तब शिक्षण प्रचार तंत्र का हिस्सा हो जाता है और इसका सबसे ज्यादा खामियाजा विद्यार्थियों और आने वाली पीढ़ियों को भुगतना पड़ता है।

वर्तमान में पढ़ाए जाने वाले इतिहास जितने झूठे होते हैं, उतनी झूठी तो कल्पित कहानियां भी नहीं होती। क्योंकि कहानी लिखने वाला पहले से ही लिख देता है कि सारी कहानी कल्पित है। इतनी सच्चाई तो उसमें होती है। इसके उलट इतिहास लिखने वाला ताल ठोक कर दावा तो यह करता है कि उसने सारा सत्य लिखा है, जबकि होता वह सारा झूठ है। इसका कारण यह है कि इतिहास अपनी-अपनी मर्जी से लिखे जाते हैं। जैसे दो महायुद्धों में प्रत्येक देश ने अपने-अपने हिसाब से अलग-अलग इतिहास लिखा। अंग्रेजों ने अपने देश के इतिहास में पहले 'गांधी एक क्रांति विरोधी व्यक्ति है' लिखा था, लेकिन अब लिखा जा रहा है कि 'वे एक महान् पुरुष हो गये।' 'वे हुए ही नहीं' ऐसा नहीं लिखते, यह उनकी मेहरबानी है।

मानव इतिहास का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि विश्व के सारे संघर्ष तीन मुद्दों—जर, जोरू, जमीन के इर्द-गिर्द घूमते रहे हैं। चाहे वह महाभारत, रामायण काल की बात हो या दो विश्वयुद्धों की। आज भी दुनिया भर में दो पड़ोसी राज्यों, भारत-पाक, भारत-चीन, इजरायल-फिलिस्तीन आदि जैसे झगड़ों के पीछे जमीन ही मुख्य मुद्दा है। आखिर ऐसा क्यों है? इस पर विचार करने पर आभास होता है कि जमीन मात्र आजीविका का एक आधार प्रदान नहीं करती है, बल्कि यह अपने आप में 'कुछ और' भी समेटे हुए है।

राजा-महाराजा किस प्रकार भोग-विलास करते थे? किस प्रकार हत्याएं करते थे? किस प्रकार शत्रुता करते थे? यह सब 'इतिहास' में मिल जाता है। यदि मात्र यही इतिहास होता, तो दुनिया कब की मिट गयी होती। यदि इस संसार की गाथा लड़ाई से शुरू होती, तो आज एक भी आदमी जीवित नहीं बचता। इस धरती पर सैकड़ों कौमों हजारों वर्षों से मिल-जुलकर रह रही है। इतिहास उनका उल्लेख

कभी नहीं करता, कर भी नहीं सकता। कैसी विडम्बना है कि जब दया, करुणा, प्रेम अथवा सत्य जैसे मानवीय गुणों का प्रभाव रुद्ध हो जाता है, या टूट जाता है, तभी उसका उल्लेख इतिहास में किया जाता है। हमें इतिहास का यह सबक सीखना चाहिए कि हिंसा-प्रतिहिंसा का रास्ता विनाश की ओर ही ले जाता है। यह किसी समस्या के समाधान तक नहीं पहुंचाता। वास्तविक स्थायी और बुनियादी समाधान तो अहिंसा के द्वारा ही निकल सकता है, जिसकी प्रक्रिया है—पारस्परिक संवाद।

दिग्विजय का युग कब का खत्म हुआ। अब मानव सेवा का युग आ गया है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सब धर्मों में तो तंग दिल वर्ग है, उनका विरोध होते हुए भी हमें आगे बढ़ना होगा। साम्राज्यवादी, हिंसावादी, पूंजीवादी इत्यादि भूतलकाल के सभी उपासकों को परे धकेल कर हमें आगे बढ़ना होगा। 'मानवता और सेवा' या 'सेवा और मानवता' यही एक मंत्र हृदय में रखते एवं बरतते हुए हमें सबका समन्वय करना है।

इतिहास ने आज तक जो कुछ भी कमाया एवं जो कुछ भी बचाया उस सबको एकत्र लाकर मानवता के जीवन में हमें बराबर करके गूथना है। उसे एकजीव बनाना है और उसमें से सर्वकल्याणकारी, सर्वोदयवादी नयी संस्कृति का निर्माण करना है।

भारत के इतिहास और समाज पर पहले 'मनु' और अब 'गांधी' का गहरा प्रभाव रहा है। किसी समाज की प्रगतिशीलता एवं सहिष्णुता का पैमाना संभवतः यही होता है कि वह कतार के अंतिम व्यक्ति से किस तरह पेश आता है। हमारे इतिहास, संविधान एवं विभिन्न मंचों पर तो हम भारतीय काफी उदारमना नजर आते हैं, लेकिन यथार्थ जीवन में हम अपने ही लोगों के प्रति बेहद दोगल एवं कठोर व्यवहार करते हैं। ओशो ने इतिहास और पुराण की आत्मा को छूकर एक ब्यौरा दिया है कि, "अगर हमें इतिहास में रहना है, तो पुराण को खोना पड़ेगा, क्योंकि इतिहास में आत्मा की कोई पूछ नहीं होती। दोख का इतिहास लिखा जाता है, जन्नत का कोई इतिहास नहीं होता। इसीलिए पूरब के

लोगों के पास इतिहास नहीं है। हमने पुराण लिखे हैं, इतिहास नहीं। पुराण तत्त्व (सार) की बात करता है। इसलिए हमने बुद्ध के बारे में न लिखकर बुद्धत्व के बारे में लिखा। पुराण का अर्थ है—सार, सुगंध इकट्टी कर लेना। इसी कारण पुराण अनादि है और इतिहास गैर जरूरी विस्तार है।"

अतः हमें इतिहास लिखने की पुरानी सामंती मानसिकता को बदलते हुए प्रेम, दया, करुणा, सहयोग, सहिष्णुता आदि मानवीय गुणों को उद्घाटित और विकसित करने वाली घटनाओं को इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए। यदि भारत को अपना नया इतिहास रचना है, तो उसे अपनी राजनीतिक एवं नैतिक प्रतिबद्धताओं के आधार पर 'भाजन का अधिकार' कानून बनाना चाहिए। देश के संसाधनों पर पहला हक उनका होना चाहिए, जो सबसे ज्यादा अभावग्रस्त हैं। भोजन का अधिकार कानून देशवासियों के हर घर से भूख को बाहर खदेड़ने के लिए मजबूर करेगा। भारत की यह पहल 'विश्व इतिहास' को एक नयी दिशा दिखायेगी। □

विनम्र श्रद्धांजलि

वरिष्ठ गांधीवादी लवणमजी नहीं रहे

वरिष्ठ गांधीवादी, सर्वास इंटरनेशनल एवं भारत नास्तिक संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री लवणम का 14 अगस्त, 2015 को नास्तिक केन्द्र, विजयवाड़ा (आंध्र प्रदेश) में निधन हो गया। वे 85 वर्ष के थे।

श्री लवणम का जन्म 10 अक्टूबर 1930 को माता सरस्वती एवं पिता गोरा के घर हुआ। श्री गोरा स्वतंत्रता आंदोलन के कार्यकर्ता थे। सन् 1930 'नमक कानून' को तोड़ने का वर्ष था। अतः श्री गोरा ने अपने पुत्र का नाम 'लवणम' रखा।

जब आचार्य विनोबा की भूदान यात्रा चल रही थी, तब श्री लवणम आंध्र प्रदेश एवं ओडिशा के कोरापुट में उनके भाषणों का अनुवाद करते थे। आपने आंध्र के नक्सलियों एवं अतिवादियों से वार्ता कर अहिंसक रास्ते से मुख्य धारा में लाने हेतु महत्वपूर्ण कार्य किया। सर्वोदय आंदोलन में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। भारत-पीकिंग

शांति यात्रा, चंबल के बागियों का आत्मसमर्पण आदि कार्यों में आप अग्रिम पंक्ति में थे।

जाति के बंधनों को तोड़ने एवं जाति प्रथा को खत्म करने के उद्देश्य से श्री लवणम ने हेमलता नामक दलित कन्या से विवाह किया। यह विवाह 1960 में सेवाग्राम आश्रम में हुआ।

श्री लवणम नास्तिकवाद एवं मानवतावाद के पुरोधा थे। इस विचार के प्रचार हेतु उन्होंने अमेरिका, कनाडा, जापान, कोरिया, हांगकांग, थाईलैंड, सिंगापुर आदि देशों की यात्रा कीं। 1959 में आपकी भेंट मार्टिन लूथर किंग जूनियर एवं उनकी पत्नी कोरेटा स्कॉट के साथ हुई।

अपने विचारों को मूर्तरूप देने के उद्देश्य से आपने 'आर्थिक समता मंडल', 'वासव्य महिला मंडली' एवं 'संस्कार' संस्थाओं की स्थापना की।

2005 में आपकी पुस्तक 'Gandhi : As we have known him' प्रकाशित हुई।

2009 में आपको रचनात्मक कार्यों के लिए जमनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सर्व सेवा संघ (अ.भा. सर्वोदय मंडल) के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही ने श्री लवणम के निधन पर शोक प्रकट करते हुए कहा कि उनके निधन से सर्वोदय आंदोलन ने अपना एक वरिष्ठ मार्गदर्शक खो दिया है। वे सदैव समाज के दलितों एवं वंचितों के प्रश्नों पर अपने को एकमेव कर लेते थे। आपने सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान तथा सर्व सेवा संघ की कार्यसमिति के सदस्य के रूप में गांधी प्रणीत आंदोलन को प्रबल एवं गहरा बनाने के लिए संनिष्ठ प्रयास किया।

श्री विजयम को भेजे पत्र में श्री विद्रोही ने कहा है कि लवणम के जाने से सर्वोदय आंदोलन के युग का अंत हो गया है। दुःख की इस घड़ी में सर्वसेवा संघ अपनी विनम्र संवेदना प्रेषित करता है। —शेख हुसैन, महामंत्री

गतिविधियां एवं समाचार

जैविक कृषि प्रशिक्षण

शिविर सम्पन्न

जैविक कृषि का प्रशिक्षण शिविर 26-29 जुलाई, 2015 तक गांधी स्मारक निधि, छतरपुर में सम्पन्न हुआ। उद्घाटन सत्र में 'विषमुक्त भोजन—सम्भावनाएं एवं चुनौती' विषय पर संगोष्ठी हुई। सत्र की अध्यक्षता वरिष्ठ सर्वोदयी दुर्गाप्रसाद आर्य ने की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि छतरपुर जिला एवं सत्र न्यायाधीश आदर्श कुमार जैन ने कहा कि शुद्ध भोजन आज सही मायने में उपलब्ध करना कठिन कार्य है। लेकिन यह एक सिद्धांत की लड़ाई है। पूरे समाज को आगे आकर किसानों के साथ खड़े होने की आवश्यकता है। देशज कृषि, गोपालन से हम विषमुक्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। जैविक खेती करने से हम स्वावलंबन के साथ शुद्ध भोजन प्राप्त कर सकते हैं। आज बाजारवाद से मुक्त होकर नये नजरिये से व्यवस्था को देखने की आवश्यकता है।

इग्नू, नई दिल्ली के निदेशक डॉ. कृपाशंकर तिवारी ने जीएम फूड से सचेत रहने की आवश्यकता पर बल दिया। खाद्य संकट से उभरने के लिए नये पर्यावरण अनुकूल तकनीक अपनाने को कहा। पूर्व न्यायाधीश एनएम लालजी ने कहा कि रासायनिक जहर आज मां के दूध तक पहुंच चुका है। स्थानीय संसाधन आधारित कृषि को प्रोत्साहन देने के साथ ही रसायन मुक्त भोजन हमारी आदत में लाने की आवश्यकता है। कृषि वैज्ञानिक डॉ. भारतेन्दु प्रकाश ने कहा कि किसान आज अकेला खड़ा है, उसकी दुर्दशा, पर्यावरण का अंधाधुंध विनाश, प्रकृति से खिलवाड़ जीवन और अस्तित्व को संकट में डाल रहा है। इसलिए समग्र सजीव कृषि की ओर अग्रसर होने की अनिवार्यता है।

जैविक कृषि प्रशिक्षण शिविर में विभिन्न सत्रों में विभिन्न वैज्ञानिकों ने अपने अनुभव बताये। वरिष्ठ कृषि वैज्ञानिक डॉ. प्रीति जोशी ने गौ संजीवक, जैविक कीटनाशी, वायोडंग कम्पोस्ट एवं अमृत जल तैयारी का प्रायोगिक

प्रशिक्षण दिया। हरिया के किसान भीम सिंह ने कीटनाशक एवं फसल वृद्धिकारक जैविक टोनिन तथा जमीन में जिंक की कमी को जैविक तरीके से कैसे दूर किया जा सके, इसकी प्रायोगिक प्रस्तुति दी। माधव आश्रम के विवेक पोतदान ने अग्निहोत्र कृषि के संबंध में जानकारी एवं प्रयोग बताया। गांधी स्मारक निधि के जैविक कृषि प्रयोग के संबंध में संजय सिंह ने कहा कि मिश्रित खेती, फसल चक्रीकरण, फसल समन्वयन के माध्यम से बेहतर जैविक कृषि किया जा सकता है। लोक विज्ञान संस्थान, देहरादून के विनोद निरंजन ने श्रीविधि के खेती से गेहूं, धान, सरसों, मक्का एवं अरहर की खेती के प्रयोग एवं तकनीक के विषय में जानकारी एवं प्रायोगिक प्रस्तुति दी। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व डीन वरिष्ठ कृषि वैज्ञानिक ओ. पी. श्रीवास्तव ने कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से मुकाबला करने के लिए संसाधन जैसे—मृदा, जल और जैव विविधता का प्रबंधन करने की बात कही।

संगोष्ठी में 'थाली में जहर', 'सुभाष शर्मा की कृषि तकनीक', 'श्री विधि की खेती' एवं जैविक खाद व देशी बीज पर आधारित फिल्मों का प्रदर्शन किया गया। शिविर में सफल जैविक किसान रविकांत सिंह (तरीचरकला), बृजवासी भाई (सतना), भगवानचरण पटेल (लवकुशनगर), शीलादेवी (हरियाणा), रविशंकर (नरसिंहपुर), हरिश्चन्द्र (बांदा), शरवीर सिंह (बिजनौर) आदि ने अपने अनुभव रखे। शिविर में आये किसानों ने तय किया कि वे अपने पड़ोस के पांच किसानों को प्रेरित करेंगे। प्रमाणीकरण के काम स्थानीय जैविक कृषक समाज की अनुशंसा पर किया जायेगा। विषमुक्त खेती की योजना बनायी जायेगी। कृषि भूमि बचाने के लिए किसान प्रतिबद्ध होंगे और देश की आबोहवा, नदियों व पर्यावरण प्रदूषित करनेवाले उद्योगों को दी जा रही खुली छूट का प्रतिरोध करेंगे। अपने क्षेत्र में देशी बीज बैंक बनाने का प्रयास किया जायेगा। कार्यक्रम का संचालन एवं आभार प्रदर्शन गांधी स्मारक निधि के मंत्री संजय सिंह ने किया। संगोष्ठी में देश के अनेक राज्यों से आये हुए किसान एवं स्थानीय लोगों ने भाग लिया। (सप्रेस)

विनम्र श्रद्धांजलियां

We are extremely grieved on sudden demise of our beloved Sri Lavanamjee the patron of Sarvodaya Samaj and true Gandhi's by spirit and action. We pray almighty to rest his soul in eternal peace. —Aditya Patnaik
Convenor, Sarvodaya Samaj

Our humble condolence to Lavanamaji, a senior committed Gandhian devoted to the down trodden of the country. We lost a strong pillar of the Gandhian family. I had visited the Nastik Kendra long back in 1977 together with Late Narain Bhai Desai and Dr. Mohan Singh Mehta and spoke their in a meeting of Lok Samiti formed by JP. A big salute to Lavanamaji!

—Bhawani Shanker Kusum
Speaker, Sarva Seva Sangh

Another star of Sarvodaya Movement has gone. The death of our beloved Dr. Lavanamaji is a irreparable loss of the Sarvodaya peace movement. The Sarvodaya Samaj can not forget his role in Bhoodan movement as well as his effort to initiate dialogue with naxalite leaders to bring them to right track.

I along with my colleagues pay homage to the departed leader and share grief and sorrow with his family members. —Chandan Pal
Secretary, Sarva Seva Sangh

लवणमजी का सक्रिय, प्रेम भरा, मानवता के लिए समर्पित जीवन सदैव याद किया जायेगा। उनके साथ काम करने, रहने का जो अवसर मिला, वह यादगार बन गया है। हिम्मत के साथ खड़े होने वाले, साथियों को लेकर आगे बढ़ने वाले और हरदम मुस्कराते रहने वाले लवणमजी को सलाम।

—रमेश शर्मा

देश में माओवाद की समस्या सुलझाने में लवणमजी ने जो भूमिका निभाई वह अविस्मरणीय है। आंध्र प्रदेश सरकार व माओवादियों—दोनों का उनपर विश्वास था कि वे समस्या को समझने और सुलझाने में मदद कर सकते हैं। उनके जाने से सर्वोदय आंदोलन को जो क्षति हुई है, उसकी भरपाई असंभव है। उनको विनम्र श्रद्धांजलि। —अशोक शरण

सत्य-प्रेम-करुणा की शक्ति

□ विनोबा

भारत के लोगों ने अनुभव से, मंथन करके यह तय किया कि सबसे श्रेष्ठ गुण है सत्य! जिस समाज में सत्य नहीं होगा उस समाज में व्यवहार के लिए आधार नहीं रहेगा। समूचे भारत में सत्यनिष्ठा की महिमा गाने वाली हरिश्चन्द्रादि की कथाएं चलती हैं। धर्म की पहली आज्ञा ही है, *सत्यं वद धर्मं चर। नास्ति सत्यात् परो धर्मः।* ऐसे वचन हमारे साहित्य में हैं, इसलिए जीवन का पहला मूल्य है—सत्य! लेकिन हम देखते क्या हैं? जीवन में कभी भी असत्य का उच्चारण न करने वाला मनुष्य विरला ही है। सत्य की महिमा मान्य है, पर व्यापार-धंधा या अन्य व्यवहार में मनुष्य असत्य बोलता है। सत्य का परम मूल्य मान्य किया लेकिन असत्य का प्रयोग सदैव करते रहते हैं।

तो क्या लोगों की नीतिमत्ता बिगड़ गयी है? नहीं। आज की समाज-व्यवस्था ही गलत है। सारी अर्थरचना गलत बुनियाद पर खड़ी है। वास्तव में सत्य का पालन सरल है असत्य का कठिन है। परंतु गलत समाज-व्यवस्था के कारण आज असत्य चल पड़ा है। समाज को असत्य प्रिय नहीं है। अगर ऐसा होता तो असत्य आचरण करने वाले मनुष्य के प्रति समाज में आदरभाव होता। परंतु आज भी आदरभाव तो सत्य का पालन करने वाले व्यक्ति के प्रति ही है। भारत में आज भी घर-घर में रामायण चलती है। हमारे अनुभवी पूर्वजों ने सत्य का मूल्य श्रेष्ठ माना और राम को उसका अवतार माना। फिर आया कृष्णावतार, जिसमें प्रेम प्रकट हुआ। तीसरा मूल्य है करुणा। बुद्ध भगवान करुणा के अवतार थे। प्रेम और करुणा की शक्ति यानी अहिंसा की शक्ति।

धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, पक्ष ये सारी उपाधियां तोड़े बिना अहिंसा की शक्ति के विकास के लिए हमारी बुद्धि काम नहीं देगी। सूर्यवत् उदासीन हुए बिना हम अहिंसा की खोज नहीं कर सकते। हमें सबसे समान भाव से निर्लिप्त रहना चाहिए। हम सबके अभिमुख हों, सबसे प्यार करें, लेकिन सब उपाधियों से अलग रहें। लोग कहते हैं कि स्नेह-संबंध करना चाहिए। पर मैं कहता हूँ कि स्नेह बढ़ना चाहिए।

अहिंसा कोई 'निगेटिव (अभावात्मक) चीज नहीं है, वह एक भावात्मक चीज है। अहिंसा का पहला अर्थ है, निर्भयता। अहिंसा में विश्वास रखने वाला न किसी से डरेगा, न किसी को डरायेगा। दूसरा अर्थ है, प्रेम और सहयोग। आज के युग में 'सहयोग' की शक्ति प्रकट करनी होगी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि हम प्रेम और सहयोग से रहेंगे तभी आगे बढ़ पायेंगे। हमें अपनी सरकार का गठन भी सहयोग के आधार पर खड़ा करना है। अहिंसा का तीसरा अर्थ है, रचनात्मक वृत्ति पर श्रद्धा। सामने वाला गुस्सा करेगा तो हम प्रेम करेंगे। सामने वाला प्रेम करता है और बदले में हम भी प्रेम करते हैं, यह तो जानवर भी करेंगे। मनुष्य को तो प्रतिरोधी प्रेम करना चाहिए। मतलब, सामने वाला तिरस्कार करेगा तो भी हम तो उसे प्यार ही करेंगे। आक्रमण केवल हिंसा में नहीं, प्रेम में भी होता है। हम प्रेमक्रमण करेंगे तभी अहिंसा की शक्ति प्रकट होगी।

अहिंसा शब्द का उच्चारण बहुत पुराने जमाने से होता रहा है। मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों को यह विचार सूझता हो, ऐसा दीखता नहीं। मुमकिन है, सूझता भी हो, लेकिन हम उसे पहचान न सकते हों। मांसजन्य वस्तु का आहार अपने लिए उचित नहीं, वनस्पति ही खाना चाहिए, ऐसा विचार गाय को छता होगा या नहीं, मालूम नहीं, लेकिन, छुआ हुआ दीखता नहीं है। ऐसा दीखता है कि उसकी देहप्रकृति ही कुछ ऐसी है कि वह वनस्पति ही ग्रहण करती है और प्राणिजन्य वस्तु पसंद नहीं करती।

लेकिन मनुष्य अति प्राचीनकाल से अहिंसा का विचार करता आया है। मेरी श्रद्धा अहिंसा के व्यापक अर्थ में है। आत्मा 'न हन्ति

न हन्यते'। वह मारता नहीं, मरता नहीं, यह आत्मा का स्वभाव है। यही अहिंसा है। हम जितना आत्म-स्वभाव के नजदीक जायेंगे, उतनी अंतःतुष्टि और शांति मिलेगी और जितनी दूर जायेंगे, उतनी अशांति मिलेगी।

इस तरह अहिंसा का विचार चला। परंतु आत्मरक्षण के लिए की गयी हिंसा को, अन्याय के विरुद्ध की गयी हिंसा को अहिंसा में गिना गया। समाज-शास्त्रकारों ने अपराधियों को तरह-तरह का दंड देना मान्य किया, उसके मूल में भी करुणा है। कम्युनिस्टों में भी करुणा है, उन्होंने गरीबों के हित में हिंसा मान्य की है। हमें सत्य का पालन करते हुए सभी प्रकार की हिंसा से निवृत्त होना है। इसलिए हम परमेश्वर से सिर्फ प्रेम या सिर्फ करुणा नहीं मांगते हैं। हम कहते हैं कि हे प्रभो! हमें सत्य दे, प्रेम दे, करुणा दे। सत्य, प्रेम और करुणा मिलकर एक पूर्ण विचार बनता है।

सत्य, प्रेम, करुणा, ये हमारे देश के तीन अमूल्य रत्न हैं। उनका मूल्य स्थापित करने के लिए हमने एक-के-बाद एक तीन अवतारों की रचना की। उन मूल्यों को अब टिकाना है। अब ज्यादा वेदांत चर्चा नहीं, अर्चा करनी है। तुकाराम महाराज कहते हैं, 'अवधे ज्ञाले ब्रह्मज्ञान। परी मेलवण बहु माजी।' ब्रह्मज्ञान में इतनी मिलावट हो गयी है कि स्वच्छ, निर्मल कुछ बचा नहीं। समाज में सत्य, प्रेम और करुणा को प्रतिष्ठित किये बिना समाज की पारमार्थिक उन्नति तो होगी नहीं, ऐहिक उन्नति भी नहीं होगी। मुझे स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहा है कि साम्ययोग, ग्रामस्वराज्य की स्थापना किये बिना समाज सुखी नहीं होगा। मैं अपनी सायं-सभा की प्रार्थना में हर रोज लोगों से मौन प्रार्थना करवाता हूँ, जिसमें कहता हूँ कि हम सब लोग सत्य-प्रेम-करुणा का गुण-चिन्तन करेंगे। सत्य, प्रेम, करुणा के तीन अवतार एक-के-बाद एक भारत में हो गये, अब हमें सत्यमूलक प्रेमप्रधान करुणा का राज्य स्थापित हो, ऐसी परिस्थिति दुनिया में पैदा करनी है। 'सत्यमेव जयते', हमारी सरकार का स्वीकारा हुआ राष्ट्रीय सिद्धांत है। उसके लिए सत्यमय साधनों को विश्वासपूर्वक पनपाना और इस्तेमाल करना है। □

बशीर अहमद मयूख की दो कविताएँ**जनमेजय यज्ञ**

अंत तो होता है मरण-धर्म रात का
लेकिन, निर्वश सपनों का बोझ
सूर्य नहीं ढीता।

मौसम जब गुस्ताख होता है
स्वच्छंद हवाओं के साथ पगलाया
शौर

चुआ देता है—

हर दिशा की देह में जहर-बुझी पिन
और पूरब की कौख से फिर
जन्म लेता है एक

रक्त-गंधी दिन!

दिन,

जो चंदन-गंधी श्री हो सकता था।

दुख मत करी, निर्वीर्य सपनों के
गर्भ-पात पर,

यह तो हीना ही था।

नपुंसक नारों का बोझ

श्रीड़ को ढीना ही था।

वे फिर उतार लेंगे आकाश से

किसी देवता का रथ,

उसकी जय-घोष का हमारा अधिकार
सुरक्षित है।

दुख मत करी, राजपुत्रों के पक्ष में
हमेशा ही काटे गये हैं

एकलव्यों के अंगूठे।

वे फिर लिटा देंगे शर-शैया पर कोई
श्रीष्म

फिर हँसैगी पाञ्चाली सुनकर अंतिम
उपदेश,

फिर बाटेंगे धर्मराज नर-कुञ्जर के
ढण्ड,

और अंधे धृतराष्ट्र सुनते रहेंगे—
संजय उवाच।

शक मत करी,
निर्विवाद है शैतान की इमानदारी,
वह जब-जब प्रकट हुआ
नकाबें उलट दीं
फरिश्तों के चेहरों से।

हम भ्रजते रहे हैं प्रणाम
सिंहासन छोड़कर जंगल में जाने
वालों के नाम,
वे बुद्ध हों या मर्यादा पुरुषोत्तम राम
कोई तीर्थकर या अर्हन्त
या हरिजन बस्ती का संत
उसे प्रणाम।

आश्चर्य मत करी,
ईश्वर को गाली देकर श्री उसकी
जय बोलने का अधिकार सुरक्षित है।

मेरे बन्धु,

एकांत संगीत ही या सामूहिक
जुगल बंदी

सर हिलाने से पहले सौच ली—

इतिहास के दंश,
कोई अकेली पीढ़ी नहीं,
श्रीगते हैं कई वंश।

इसलिए आओ, हम यज्ञ करें

इससे पहले

कि हवाएं पागल हो जायें—

सी डालें अपनी नाव के फटे पाल।

इससे पहले कि

दिशाएं फेंके श्रम जाल,

जागें दिग्पाल।

नागों की समिधा में डाल

आओ हम यज्ञ करें,

जनमेजय यज्ञ।

इस बार पितामह सुनें

वे गाड़ रहे हैं रेत में अपने
शत्रु मुर्गी-शीश
तूफान आयेगा।
उनसे कही, पलायन का नाम
क्रांति नहीं होता।

वे लाद रहे हैं अपनी पीठ पर
आकाश
टिके होने का चिमगादड़ी-श्रम
बंद आंखों वाले खरगोश
आज रहे हैं पीढ़ी की आंख में
भविष्य-हीन अंधकार,
उनसे कही—

इन्कलाब मरता नहीं
युद्ध अभी जारी है।

हमने भोगे हैं व्यवस्था के सिंहासनों
पर आसीन

अंधे धृतराष्ट्रों के पुत्र-प्रेम,
कई बार!

और हर बार हमारे सर पर
लद गया है महाभारत के
अठारह पर्वों का भार।

किन्तु इस बार, पितामह सुनें—

नहीं है हमारे हाथ में सुलह की
सफेद पताका,

इस बार हम नहीं पढ़ेंगे

शांति का अठारहवां अध्याय।

सुनें सप्त महारथी, इस बार गर्भस्थ
अभिमन्यु

सीख गया है ब्यूह से वापस आना।

सुनें बंद आंखों वाले 'खरगोश'

हमारा जनार्दनीघोष—

□ 'धर्म-क्षेत्रे वा कुकक्षेत्रे'। □